सूत्र विभाग–

दसवाँ अध्ययन : द्रुमपत्रक

(दसमं अज्झयणं : दुमपत्तयं)

जीवन की क्षणभंगुरता से अप्रमाद का उपदेश–

मूल– दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥1॥

अन्वयार्थ– जहा– जैसे, **राइगणाण अच्चए–** रात्रिसमूह के बीत जाने पर, **पंडुयए दुमपत्तए–** वृक्ष का पका हुआ पत्ता, **निवडइ–** गिर जाता है, **एवं–** इसी प्रकार, **मणुयाण जीवियं–** मनुष्यों का जीवन (भी एक दिन समाप्त हो जाता है, अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समयमात्र भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– जैसे रात्रिगण के व्यतीत हो जाने पर वृक्ष का पका हुआ पीला पत्ता झड़ जाता है, इसी प्रकार मनुष्यों का जीवन भी एक दिन समाप्त हो जाता है। अतः हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

मूल– कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥2॥

अन्वयार्थ– जह– जैसे, **कुसग्गे–** कुश के अग्रभाग (नोक) पर, **लंबमाणए–** टिकी हुई (लटकती हुई), **ओसबिंदुए–** ओस की बूँद, **थोवं–** थोड़ी देर, **चिट्ठइ–** ठहरती है, **एवं–** इसी प्रकार, **मणुयाण जीवियं–** मनुष्यों का जीवन है। (अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय (क्षण) मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– जैसे कुश के अग्रभाग पर टिकी हुई ओस की बूँद बहुत थोड़ी देर तक ठहरती है, वैसे ही मनुष्यों का भी जीवन है। अतः गौतम! समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल– इइ इत्तरियंमि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।
विहुणाहि रयं पुरे कडं, समयं गोयम! मा पमायए॥3॥

अन्वयार्थ– इइ– इस प्रकार, **इत्तरियंमि आउए–** अल्पकालीन आयुष्य में, **बहुपच्चवायए जीवियए–** जीवन बहुत से विघ्नों (प्रत्यवायों) से परिपूर्ण है। अतः **पुरे कडं रयं–** पूर्वकृत कर्मरज को, **विहुणाहि–** दूर कर (झाड़ दे)। **गोयम!–** हे गौतम! (इसमें) **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद न कर।

भावार्थ– इस प्रकार आयुष्य बहुत ही थोड़ा है और जीवन अनेक विघ्नों से भरा है, अतः (इस थोड़े से जीवन में) पूर्व त कर्मरज को (तप–संयम आदि से) दूर करो। हे गौतम! (इस कार्य में) समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

दुर्लभ मनुष्यभव पाकर भी प्रमाद न करो–

मूल– दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम! मा पमायए॥4॥

अन्वयार्थ– सव्वपाणिणं– विश्व के समस्त प्राणियों को, **चिरकालेण वि–** चिरकाल में भी, **माणुसे भवे–** मनुष्यभव (मानवजीवन) **खलु दुल्लहे–** निश्चय ही दुर्लभ है। **य–** और, **कम्मुणो–** कर्मों का, **विवाग–** विपाक, **गाढा–** गाढ (सुदृढ) है। (अतः) **गोयम!–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत करो।

भावार्थ– विश्व के समस्त प्राणियों को चिरकाल में भी मनुष्यभव दुर्लभ हैं और कर्मों का विपाक गाढ़ है। अतः हे गौतम! समयमात्र भी प्रमाद मत करो।

मनुष्यभव की दुर्लभता का प्रथम कारण :
स्थावरकाय में उत्कृष्ट स्थिति–

मूल– पुढविकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥5॥

अन्वयार्थ– पुढविकायमइगओ– पृथ्वीकाय में गया (उत्पन्न) हुआ, **जीवो–** जीव, **उक्कोसं उ–** उत्कृष्टतः (अधिक से अधिक), **संखाईयं कालं–** असंख्य काल तक, **संवसे–** रहता है। (अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– पृथ्वीकाय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक (पुनः पुनः जन्म–मरण करके) असंख्य काल तक रहता है। (अतः) हे गौतम! समयमात्र का भी प्रमाद न कर।

मूल– आउकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥6॥

अन्वयार्थ– आउक्कायमइगओ– अप्काय (जल) में गया (उत्पन्न) हुआ, **जीवो–** जीव, **उक्कोसं उ–** उत्कृष्टतः, **संखाईयं कालं–** असंख्य काल तक, **संवसे–** रहता है। अतः **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– अप्काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य काल तक रहता है। (अतः) हे गौतम! समयमात्र का भी प्रमाद न कर।

मूल– तेउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥7॥

अन्वयार्थ– तेउक्कायमइगओ– तेजस्काय (अग्नि) में गया (उत्पन्न) हुआ, **जीवो–** जीव, **उक्कोसं उ–** उत्कृष्टतः, **संखाईयं कालं–** असंख्य काल तक, **संवसे–** रहता है। (अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– तेजस्काय में उत्पन्न हुआ जीव (पुनः पुनः जन्म–मरण करके) अधिक से अधिक असंख्यकाल तक रहता है। (अतः) हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल– वाउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखाईयं, समयं गोयम! मा पमायए॥8॥

अन्वयार्थ– वाउक्कायमइगओ– वायुकाय में गया (उत्पन्न) हुआ, **जीवो–** जीव, **उक्कोसं उ–** उत्कृष्टतः, **संखाईयं कालं–** असंख्य काल तक, **संवसे–** रहता है (अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– वायुकाय में उत्पन्न हुआ जीव (पुनः पुनः जन्म–मरण करके) उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है। (अतः) हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल- वणस्सइकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालमणंतदुरंतं, समयं गोयम! मा पमायए॥9॥

अन्वयार्थ– वणस्सइकायमइगओ– वनस्पतिकाय में गया (उत्पन्न) हुआ, **जीवो–** जीव, **उक्कोसं उ–** उत्कृष्टतः, **दुरंतं अणंत–कालं–** दुःख से समाप्त होने वाले अनन्तकाल तक, **संवसे–** रहता है। (अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– वनस्पतिकाय में उत्पन्न हुआ जीव (पुनः पुनः जन्म–मरण करके) उत्कृष्टतः (अधिक से अधिक) दुःख से अन्त होने वाले अनन्त काल तक रहता है। (अतः) हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

मानवभव–दुर्लभता का दूसरा कारण – त्रसकाय में उत्कृष्ट स्थिति–

मूल- बेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्ज संन्नियं, समयं गोयम! मा पमायए॥10॥

अन्वयार्थ– बेइंदियकायमइगओ– द्वीन्द्रिय काय में गया (उत्पन्न) हुआ, **जीवो–** जीव, **उक्कोसं उ–** उत्कृष्टतः, **संखिज्ज संन्नियं कालं–** संख्येय (संज्ञक) काल तक, **संवसे–** रहता है, **गोयम–** हे गौतम!, **समयं–** समयमात्र का, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– द्वीन्द्रियकाय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्येयकाल तक वहाँ रहता है। अतः हे गौतम! तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल- तेइंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्ज संन्नियं, समयं गोयम! मा पमायए॥11॥

अन्वयार्थ– तेइंदियकायमइगओ– त्रीन्द्रियकाय में गया (उत्पन्न) हुआ, **जीवो–** जीव, **उक्कोसं उ–** उत्कृष्टतः (अधिक से अधिक), **संखिज्जसंन्नियं कालं–** संख्येय काल तक, **संवसे–** रहता है। **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– त्रीन्द्रियकाय में उत्पन्न हुआ जीव, अधिक से अधिक संख्येयकाल तक वहाँ रहता है। इसलिए हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल- चउरिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
कालं संखिज्जसंन्नियं, समयं गोयम! मा पमायए॥12॥

अन्वयार्थ– चउरिंदियकायमइगओ– चतुरिन्द्रियकाय में उत्पन्न हुआ, **जीवो–** जीव, **उक्कोसं उ–** उत्कृष्टतः, **संखिज्जसंन्नियं कालं–** संख्यात काल तक, **संवसे–** रहता है (अतः), **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– चतुरिन्द्रियकाय में उत्पन्न हुआ जीव, अधिक से अधिक, संख्येयकाल तक वहाँ रहता है। अतः हे गौतम! तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल– पंचिंदियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
सत्तट्ठभवग्गहणे, समयं गोयम! मा पमायए॥13॥

अन्वयार्थ– पंचिंदियकायमइगओ– पंचेन्द्रियकाय में उत्पन्न हुआ, **जीवो–** जीव, **उक्कोसं–** उत्कृष्टतः, **सत्तट्ठभवग्गहणे–** सात या आठ जन्म ग्रहण (भव) तक, **संवसे–** रहता है (अतः), **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– पंचेन्द्रिय काय में उत्पन्न हुआ जीव, अधिक से अधिक, सात या आठ जन्म तक वहाँ रहता है। अतः हे गौतम! तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल– देवे नेरइए य अइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे।
इक्किक्क-भवग्गहणे, समयं गोयम! मा पमायए॥14॥

अन्वयार्थ– देवे य नेरइए– देव और नरक योनि में, **अइगओ–** गया (उत्पन्न) हुआ, **जीवो–** जीव, **उक्कोसं उ–** उत्कृष्टतः, **इक्किक्कभवग्गहणे–** एक–एक भव (जन्म) ग्रहण तक, **संवसे–** रहता है (अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– देवगति और नरकगति में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक, एक–एक भव तक वहाँ रहता है। इसलिए हे गौतम! तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

प्रमादबहुल जीव का सतत भवभ्रमण–

मूल– एवं भवसंसारे, संसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं।
जीवो पमायबहुलो, समयं गोयम! मा पमायए॥15॥

अन्वयार्थ– एवं– इस प्रकार (पूर्वोक्त वर्णन के अनुसार), **पमायबहुलो जीवो–** प्रमाद की अधिकता वाला जीव, **सुहासुहेहिं कम्मेहिं–** शुभाशुभ–कर्मों के कारण, **भव–संसारे–** जन्म–मरण रूप संसार में, **संसरइ–** परिभ्रमण करता है (अतः), **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– इस (पूर्वोक्त वर्णन) के अनुसार प्रमाद की अधिकता वाला जीव अपने पूर्वकृत शुभ–अशुभ कर्मों के कारण चतुर्गतिक जन्म–मरणरूप संसार में (अनन्तकाल तक सतत) परिभ्रमण करता रहता है। (अतः) हे गौतम! समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

मनुष्यत्व पाकर भी ये घाटियाँ पार करना दुर्लभतर–

मूल– लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरिअत्तं पुणरवि दुल्लहं।
बहवे दसुआ मिलेक्खुआ, समयं गोयम! मा पमायए॥16॥

अन्वयार्थ– माणुसत्तणं– (दुर्लभ) मनुष्य जीवन, **लद्धूण वि–** पाकर भी, **आरिअत्तं–** आर्यत्व पाना, **पुणरवि–** और भी, **दुल्लहं–** दुर्लभ है, (क्योंकि मनुष्य होकर भी) **बहवे–** बहुत–से लोग, **दसुआ–** दस्यु (और) **मिलेक्खुआ–** म्लेच्छ होते हैं (अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– दुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर भी आर्यत्व (अथवा आर्यदेश में जन्म) पाना तो और भी दुर्लभ है, क्योंकि बहुत–से लोग मनुष्य होकर भी दस्यु (डाकू) और म्लेच्छ होते हैं। हे गौतम! समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल– लद्धूण वि आरियत्तणं, अहीणपंचिंदियया हु दुल्लहा।
विगलिंदियया हु दीसई, समयं गोयम! मा पमायए॥17॥

अन्वयार्थ– आरियत्तणं– आर्यत्व (या आर्य देश में जन्म), **लद्धूण वि–** पाकर भी, **अहीण–पंचिंदियया–** पाँचों इन्द्रियों की अविकलता (या पंचेन्द्रिय परिपूर्णता) पाना, **हु–** निश्चय ही, **दुल्लहा–** दुर्लभ है (क्योंकि बहुत–से लोगों में) **विगलिंदियया हु–** विकलेन्द्रियता (इन्द्रिय–विकलता), **दीसई–** दिखाई देती है (इसलिए), **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद न कर।

भावार्थ– आर्यत्व प्राप्त होने पर भी, पांचों इन्द्रियों की परिपूर्णता (अविकलता या स्वस्थता) पाना तो अतिदुर्लभ है, क्योंकि बहुत–से लोग संसार में इन्द्रिय–विकल दिखाई देते हैं। अतः हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल– अहीण पंचिंदियत्तं पि से लहे, उत्तम धम्मसुई हु दुल्लहा।
कुतित्थि निसेवए जणे, समयं गोयम! मा पमायए॥18॥

अन्वयार्थ– (कदाचित्) **से–** वहाँ **अहीणपंचिंदियत्तं वि–** अविकल–पंचेन्द्रियता (पूर्ण–पंचेन्द्रियत्व) भी, **लहे–** प्राप्त कर ले, **उत्तमधम्मसुई हु–** उत्तम धर्म–श्रवण पुनः, **दुल्लहा–** दुर्लभ है, (क्योंकि बहुत–से), **कुतित्थिनिसेवए जणे–** कुतीर्थिकों के उपासक लोग भी (देखे जाते हैं) (इसलिए), **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद न कर।

भावार्थ– पांचों इन्द्रियाँ अविकल (सम्पूर्ण) प्राप्त होने पर भी उत्तमधर्म का श्रवण अतीव दुर्लभ है। क्योंकि बहुत–से लोग कुतीर्थिकों के उपासक हो जाते हैं। अतः हे गौतम! समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल– लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरवि दुल्लहा।
मिच्छत्त निसेवए जणे, समयं गोयम! मा पमायए॥19॥

अन्वयार्थ– उत्तमं सुइं– (कदाचित्) उत्तम धर्म–श्रवण रूप श्रुति, **लद्धूण वि–** प्राप्त हो जाने पर भी, **सद्दहणा–** (उस सद्धर्म–या उस सुने हुए धर्म पर) श्रद्धा होना, **पुणरवि–** और भी, **दुल्लहा–** दुर्लभ है (क्योंकि बहुत से), **मिच्छत्तनिसेवए जणे–** मिथ्यात्व का सेवन करने वाले लोग हैं (अतः), **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– उत्तम–धर्म का श्रवण (श्रुति) मिलने पर भी, फिर उस पर श्रद्धा होना और भी दुर्लभ है, क्योंकि बहुत–से लोग मिथ्यात्व का सेवन करने वाले होते हैं। अतः हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल– धम्म पि हु सद्दहंतया, दुल्लहया काएण फासया।
इह कामगुणेहिं मुच्छिया, समयं गोयम! मा पमायए॥20॥

अन्वयार्थ– धम्मं पि हु– उत्तम–धर्म पर, **सद्दहंतया–** श्रद्धा होने पर भी, **काएण फासया–** तदनुरूप काया से स्पर्श–आचरण होना, **दुल्लहा–** दुर्लभ है, **इह–** इस संसार में, (बहुत से धर्म–श्रद्धालु भी), **कामगुणेहिं–** काम–भोगों में, **मूच्छिया–** मूर्च्छित (आसक्त) हैं (अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– उत्तम–धर्म में श्रद्धा हो जाने पर भी उसका कायिक (सक्रिय) आचरण महादुष्कर है, क्योंकि इस संसार में बहुत–से लोग कामभोगों में आसक्त हैं। अतः हे गौतम! समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

इन्द्रियबल की उत्तरोत्तर क्षीणता के कारण अप्रमाद–प्रेरणा–

मूल– परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सोयबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥21॥

अन्वयार्थ– ते– तुम्हारा, **सरीरयं–** शरीर, **परिजूरइ–** सब प्रकार से जीर्ण हो रहा है, **ते–** तुम्हारे, **केसा–** केश (सिर के बाल), **पंडुरया–** सफेद, **हवंति–** हो रहे हैं। **य–** और, **से सोयबले–** श्रोत्र (कान) का वह (पूर्ववर्ती) बल, **हायई–** घट रहा है (अतः), **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– हे गौतम! प्रतिक्षण उम्र घटती जाने के साथ तुम्हारा यह शरीर जीर्ण होता जा रहा है, यौवन में नेत्रों को आनन्ददायक ये तुम्हारे काले केश अब सफेद हो रहे हैं। श्रोत्रबल, (श्रवणशक्ति) जो पहले बहुत तीव्र था, अब कमजोर हो रहा है, ऐसी स्थिति में तुम समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

मूल– परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से चक्खुबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥22॥

अन्वयार्थ– ते सरीरयं परिजूरइ– तुम्हारा शरीर सब प्रकार से जीर्ण हो रहा है। **ते केसा पंडुरया हवंति–** तुम्हारे केश श्वेत हो रहे हैं, **य–** और, **से चक्खुबले हायई–** नेत्र का वह (पूर्ववर्ती) बल घट रहा है, **गोयम–** हे गौतम! **समयं मा पमायए–** समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

भावार्थ– इसी तरह तुम्हारा शरीर जराजीर्ण हो रहा है, केश पक कर सफेद हो रहे हैं और नेत्रबल, जो पहले बहुत तेज था, अब क्षीण हो रहा है। ऐसी स्थिति में, हे गौतम! तुम समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

मूल– परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से घाणबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥23॥

अन्वयार्थ– ते सरीरयं परिजूरइ– तुम्हारा शरीर परिजीर्ण (सर्वथा जीर्ण) हो रहा है, **ते केसा पंडुरया हवंति–** तुम्हारे केश श्वेत हो रहे हैं, **य–** और, **से घाणबले हायई–** घ्राण (नासिका) का वह (पूर्ववर्ती) बल घट रहा है अतः, **गोयम–** हे गौतम! **समयं मा पमायए–** समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

भावार्थ– तुम्हारा शरीर अतिजीर्ण हो रहा है, उम्र के साथ तुम्हारे केश पक गए हैं, और घ्राणेन्द्रिय का वह पूर्ववर्ती बल अब घट गया है। ऐसी स्थिति में, हे गौतम! तुम समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

मूल– परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से जिब्भबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥24॥

अन्वयार्थ– ते सरीरयं परिजूरइ– तुम्हारा शरीर परिजीर्ण हो रहा है। **ते केसा पंडुरया हवंति–** तुम्हारे केश श्वेत हो रहे हैं। **य–** और, **से जिब्भबले हायई–** जीभ का वह (पूर्ववर्ती) बल घट रहा है। (अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं मा पमायए–** समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

भावार्थ– तुम्हारा शरीर वृद्धावस्था के कारण अत्यन्त शिथिल हो रहा है और केश श्वेत हो रहे हैं और जीभ का वह सामर्थ्य अब कम हो रहा है, अतः हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

मूल– परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से फासबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥25॥

अन्वयार्थ– ते सरीरयं परिजूरइ– तुम्हारा शरीर परिजीर्ण हो रहा है। **ते केसा पंडुरया हवंति–** तुम्हारे केश श्वेत हो रहे हैं। **य–** और, **से फासबले हायई–** स्पर्श का वह (पूर्ववर्ती) बल घट रहा है। (अतः) **गोयम–** गौतम! **समयं मा पमायए–** समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

भावार्थ– तुम्हारा शरीर अत्यन्त जीर्णशीर्ण हो रहा है और तुम्हारे ये केश सफेद हो रहे हैं और देखो, तुम्हारी स्पर्शनेन्द्रिय की वह पहले वाली शक्ति अब क्षीण हो रही है, अतः गौतम! अब समय मात्र भी प्रमाद मत करो।

मूल– परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सव्वबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए॥26॥

अन्वयार्थ– ते सरीरयं परिजूरइ– तुम्हारा शरीर अत्यन्त जीर्ण हो रहा है, **ते केसा पंडुरया हवंति–** तुम्हारे सिर के केश सफेद हो रहे हैं। **य–** और, **से सव्वबले–** क्रमशः समस्त (इन्द्रियों या अंगों का) बल, **हायई–** क्षीण हो रहा है। (अतः) **गोयम–** हे गौतम!, **समयं मा पमायए–** समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

भावार्थ– तुम्हारा यह तन जीर्ण–शीर्ण हो रहा है। तुम्हारे ये केश अब सफेद हो रहे हैं और क्रमशः तुम्हारी इन्द्रियों और अंगों की समस्त शक्ति अब क्षीण हो रही है। अतः गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

शीघ्र–विघातक रोगों से शरीर का विध्वंस–

मूल– अरई गंडं विसूइया, आयंका विविहा फुसंति ते।
विहडइ विद्धंसइ ते सरीरयं, समयं गोयम! मा पमायए॥27॥

अन्वयार्थ–अरई– वातविकार आदि से जन्य चित्त का उद्वेग (या पित्त रोग) **गंडं–** फोड़ा, **विसूईया–** विसूचिका (हैजा), (और) **विविहा आयंका–** विविध प्रकार के शीघ्रघाती रोग (आतंक), **ते फुसंति–** तुम्हारे शरीर को स्पर्श करते हैं, (जिनसे) **ते सरीरयं–** तुम्हारा शरीर, **विहडइ–** गिर जाता है, **विद्धंसइ–** विध्वस्त (नष्ट) हो जाता है, (अतः), **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समय मात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– वातरोगजनित चित्त के उद्वेग, फोड़ा–फुंसी, हैजा–वमन आदि रोग तथा अन्य भी अनेक प्रकार के शीघ्रघातक–आतंक (व्याधियाँ) तुम्हारे शरीर पर आक्रमण (स्पर्श) करेंगे। इससे तुम्हारा यह शरीर शक्तिहीन हो जाएगा, विनष्ट भी हो सकता है। इसलिए गौतम! तुम समय मात्र का भी प्रमाद न करो।

सर्वस्नेहमुक्तता का उपदेश–

मूल– वोछिंद सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं।
से सव्वसिणेहवज्जिए, समयं गोयम! मा पमायए॥28॥

अन्वयार्थ– सारइयं कुमुयं– शरद् ऋतु–सम्बन्धी कुमुद (चन्द्रविकासी कमल), **पाणियं व–** जैसे जल से (लिप्त नहीं होता), उसी प्रकार (तुम भी) **अप्पणो सिणेहं–** अपने स्नेह (बन्धन–लिप्तता) को, **वोछिंद–** तोड़ (या विच्छेद कर) दो, और **से–** फिर, **सव्वसिणेह वज्जिए–** सभी प्रकार के स्नेह (बन्धन या लिप्तता) का त्यागी बन, **गोयम–** गौतम! (इसमें) **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– जैसे शरत्कालीन कुमुद (चन्द्र विकासी कमल) पानी से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तुम भी अपने स्नेह–बन्धन को तोड़कर निर्लिप्त बनो। फिर सभी प्रकार के स्नेहबन्धन से रहित हो जाओ। हे गौतम! (इस कार्य में) समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

पूर्व परिचितों के प्रति अनासक्ति का उपदेश–

मूल– चिच्चाण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं।
मा वंतं पुणो वि आविए, समयं गोयम! मा पमायए॥29॥

अन्वयार्थ– धणं– धन, **च–** और, **भारियं–** भार्या (पत्नी) का, **चिच्चा–** परित्याग कर तू, **अणगारियं–** अनगार–वृत्ति में, **पव्वइओ हि सि–** प्रव्रजित हुआ (घर से निकला) है, (अतः) **वंतं–** एक बार वमन किये हुए भोगों को, **पुणो मा वि आविए–** पुनः मत पी, अर्थात् स्वीकार मत कर। **गोयम–** हे गौतम! **समयं मा पमायए–** समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

भावार्थ– धन और पत्नी का परित्याग करके तू अनगारवृत्ति में प्रव्रजित हुआ है। अतः एक बार वमन किये हुए भोगों को पुनः मत पी, अर्थात् फिर सेवन मत कर। हे गौतम! तू समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल– अवउज्झिय मित्तबंधवं, विउलं चेव धणोहसंचयं।
मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम! मा पमायए॥30॥

अन्वयार्थ– मित्तबंधवं– मित्र बान्धव, **चेव–** और, **विउलं धणोहसंचयं–** विपुल स्वर्णादि धनराशि को, **अवउज्झिय–** छोड़कर, **तं–** उन मित्रादि की, **बिइअं–** दूसरी बार अर्थात् फिर से, **मा गवेसए–** गवेषणा (तलाश) मत कर, **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– मित्र, बान्धव, और विपुल–संचित स्वर्णादि धनराशि का त्याग करके फिर से उनकी गवेषणा (तलाश) मत कर। हे गौतम! तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

प्राप्त नैयायिक पथ पर अप्रमत्ततापूर्वक चलने का निर्देश–

मूल– न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए।
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम! मा पमायए॥31॥

अन्वयार्थ– (भविष्य में लोग कहेंगे) **अज्ज जिणे हु न दिस्सई–** आज 'जिन' नहीं दीख रहे हैं, **मग्गदेसिए–** (और जो) मार्ग निर्देशक हैं, (वे) **बहुमए दिस्सई–** अनेक मत के दिखाई देते हैं, (अर्थात्– वे एक मत के नहीं हैं), किन्तु **संपइ–** इस समय, (तुझे) **नेयाउए–** न्यायपूर्ण, **पहे–** मार्ग (उपलब्ध है), (अतः) **गोयम–** हे गौतम! **समयं मा पमायए–** समयमात्र भी प्रमाद मत कर।

भावार्थ– (भविष्य में लोग कहेंगे–) 'आज जिन (तीर्थंकर) नहीं दीख रहे हैं, और जो मार्ग निर्देशक हैं, वे भी अनेक मत के दीख रहे हैं।' किन्तु आज (मेरी विद्यमानता में) तुझे न्यायपूर्ण– मुक्तिरूप मार्ग उपलब्ध है, अतः हे गौतम! समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

मूल– अवसोहिय कंटगापहं, ओइण्णो सि पहं महालयं।
गच्छसि मग्गं विसोहिया, समयं गोयम! मा पमायए॥32॥

अन्वयार्थ– गोयम– हे गौतम! **कंटगापहं–** कण्टकाकीर्ण पथ को, **अवसोहिय–** छोड़कर, **महालयं पहं–** विशाल महापथ (राजमार्ग) पर, **ओइण्णोसि–** उतर आया है। (अतः) **विसोहिया–** दृढ़ निश्चय करके, **मग्गं–** उसी मोक्षमार्ग पर, **गच्छसि–** तू चल, **समयं मा पमायए–** (इसमें) एक समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

भावार्थ– हे गौतम! अब तू कण्टकाकीर्ण–पथ छोड़कर विशाल मोक्षमार्गरूप महापथ पर उतर आया है। अतः दृढ़ निश्चय करके उसी मोक्षमार्ग पर तू चल। (इसमें) समयमात्र का प्रमाद मत कर।

विषमपथ पर न चलने का निर्देश–

मूल- अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमेऽवगाहिया।
पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम! मा पमायए॥33॥

अन्वयार्थ– अबले भारवाहए– दुर्बल भारवाहक की तरह (तू) **विसमे मग्गे–** विषम–मार्ग में, **मा अवगाहिया–** मत चलना (अवगाहन करना)। (अन्यथा उसकी भांति), **पच्छा पच्छाणुतावए–** पीछे पछताना पड़ता है। **गोयम–** हे गौतम! **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– जैसे कमजोर भारवाहक (मजदूर) विषममार्ग पर जाता है, तो बाद में पछताता है, वैसे ही हे गौतम! तुम भी विषममार्ग में मत चले जाना, अन्यथा तुम्हें भी बाद में पछताना होगा। अतः समयमात्र का भी प्रमाद मत करो।

संसारसागर शीघ्रता से पार करने का निर्देश–

मूल- तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम! मा पमायए॥34॥

अन्वयार्थ– गोयम– हे गौतम!, (तू) **महं अण्णवं–** महासागर को तो, **तिण्णो हु सि–** पार कर गया है! **तीरमागओ–** अब तीर (तट) के निकट पहुँच कर, **किं पुणचिट्ठसि?–** फिर क्यों खड़ा है? **पारं गमित्तए–** इससे (संसार–सागर से) पार करने की, **अभितुर–** जल्दी कर। (इसमें) **समयं–** समयमात्र का भी, **मा पमायए–** प्रमाद मत कर।

भावार्थ– हे गौतम! तू महासागर (संसार महोदधि) को तो पार कर चुका है, अब इसके तट के निकट पहुँच कर क्यों खड़ा (स्थगित) हो गया? इसे पार करने की जल्दी कर। समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

सिद्धिलोक प्राप्त होने का आश्वासन–

मूल- अकलेवरसेणिमुस्सिया, सिद्धिं गोयम! लोयं गच्छसि।
खेमं च सिवं अणुत्तरं, समयं गोयम! मा पमायए॥35॥

अन्वयार्थ– गोयम– हे गौतम! (तू) **अकलेवरसेणिं–** अशरीरी सिद्धों की श्रेणि–क्षपकश्रेणि पर, **उस्सिया–** आरूढ़ होकर, **खेमं सिवं च अणुत्तरं–** क्षेम, शिव और अनुत्तर, **सिद्धिं लोयं–** सिद्धि नामक लोक को, **गच्छसि–** प्राप्त करेगा (या पहुँचेगा), (अतः इसके लिए) **गोयम–** हे गौतम!, **समयं मा पमायए–** समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

भावार्थ– गौतम! तू देहरहित सिद्धत्व को प्राप्त कराने वाली क्षपक–श्रेणि पर आरूढ़ होकर, उस सिद्धिलोक को प्राप्त करेगा, जो कि क्षेम, शिव और अनुत्तर है। अतः हे गौतम! (इसे प्राप्त करने के लिए) तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

सिद्धिपद प्राप्ति का मुख्य उपाय–

मूल- **बुद्धे परिणिव्वुडे चरे, गामगए नगरे व संजए।**
संतिमग्गं च बूहए, समयं गोयम! मा पमायए॥36॥

अन्वयार्थ–बुद्धे– बुद्ध (तत्त्वज्ञ), **परिनिव्वुडे–** परिनिर्वृत्त– उपशान्त एवं, **संजए–** पाप स्थानों से उपरत (संयत) होकर, **गामगए नगरे व–** ग्राम में या नगर में (तू) **चरे–** विचरण कर, **च–** और, **संतिमग्गं–** शान्तिमार्ग को, **बूहए–** बढ़ा। **गोयम–** गौतम!, **समयं मा पमायए–** इसमें तू समय मात्र का भी प्रमाद न कर।

भावार्थ– सम्बुद्ध, उपशान्त एवं संयत होकर तू ग्राम में अथवा नगर में विचरण कर और शान्ति मार्ग की वृद्धि कर। इसमें समयमात्र का भी प्रमाद मत कर।

भगवदुक्त उपदेशानुसार आचरण से गौतम को सिद्धि–

मूल- **बुद्धस्स निसम्म भासियं, सुकहियमट्ठपओवसोहियं।**
रागं दोसं च छिंदिया, सिद्धिगइं गए गोयमे॥37॥

-त्ति बेमि॥

अन्वयार्थ– अट्ठपओवसोहियं– अर्थ एवं पद से सुशोभित, **सुकहियं–** सुकथित, **बुद्धस्स–** केवलज्ञान से समस्त वस्तुतत्त्व के ज्ञाता–दृष्टा भगवान् महावीर की, **भासियं–** वाणी, **निसम्म–** सुनकर, **रागं दोसं च–** राग और द्वेष का, **छिंदिया–** छेदन कर, **गोयमे–** श्री गौतम स्वामी, **सिद्धिगइं गए–** सिद्धि–गति को प्राप्त हुए (पहुँचे)।

–त्ति बेमि– ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ– अर्थ और **पदों** से सुशोभित, एवं सुकथित, सर्वज्ञ भगवान् महावीर की वाणी सुनकर, राग और द्वेष का क्षय करके, गौतमस्वामी सिद्धि–गति में पहुँचे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

॥द्रुमपत्रक : दशम अध्ययन समाप्त॥

सुखविपाक सूत्र

परिचय–

इसमें उन आत्माओं का वर्णन हैं, जिन्होंने शुभकर्मों के कारण सुख को प्राप्त किया। इसमें 10 अध्ययन हैं जिनमें प्रथम अध्ययन सुबाहुकुमार का है। पूर्वभव में सुबाहुकुमार द्वारा निर्दोष–भाव से मासखमण के पारणे में भिक्षार्थ आए मुनिराज को खीर का आहार दिया गया था, उसी के फलस्वरूप उसे वर्तमान भव में राजपरिवार में जन्म तथा अनेक सुखोपभोग के साधन उपलब्ध हुए तथा भगवान महावीर का समागम भी प्राप्त हुआ। शेष नौ अध्ययन सुबाहुकुमार की तरह ही हैं, केवल नगरी आदि के नाम का अन्तर है, उन्होंने भी पूर्वजन्म के शुभकर्मों के कारण वर्तमान भव में सुखोपभोग प्राप्त किया। इस सुखविपाक सूत्र से हम निम्नलिखित प्रेरणाएँ ले सकते हैं :–

प्रेरणाएँ–

1. भव्य आत्माएँ अधिक समय तक भोगों में आसक्त नहीं रहती, किन्तु निमित्त मिलते ही भोगों का त्याग कर विरक्त बन जाती हैं।
2. यदि हम संयम–स्वीकार न कर सकें तो हमें श्रावक के व्रत अवश्य ही ग्रहण करने चाहिए।
3. दीक्षा–ग्रहणोपरान्त अपना समय निर्दोष–संयमाराधना एवं ज्ञान–ध्यान के चिन्तन–मनन में बिताना चाहिए।
4. सुपात्र–दान देने से सम्यक्त्व की प्राप्ति एवं संसार–परीत होता है। अतः सुपात्रदान का लक्ष्य रखना चाहिए।
5. मुनिराज के गोचरी पधारने पर शालीनता से विधिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।
6. एषणा के 42 दोषों एवं गोचरी सम्बन्धी विवेक–व्यवहार का ज्ञान श्रावकों को भी रखना चाहिए।
7. सुपात्र दान देने में त्रैकालिक हर्ष होना चाहिए यथा– (1)दान देने के सुअवसर पर, सुसंयोग प्राप्त होने पर; (2)दान देते वक्त; (3)दान देकर निवृत्त हो जाने पर।

इस तरह से सुखविपाक सूत्र का अध्ययन करने से हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि अगर हम सुख चाहते हैं तो अपना जीवन दूसरों की भलाई, कल्याण एवं परोपकार में लगाएँ, स्वयं वीतराग–धर्म का आराधन कर इस मानव–जन्म को सफल व सार्थक बनाएँ। जीवन की सफलता सुख–भोग में नहीं, भोगों के त्याग में है, इस तथ्य को सदैव स्मरण रखें।

प्रथम अध्ययन : सुबाहुकुमार

प्रस्तावना–

1. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे होत्था। रिद्धत्थिमिय समिद्धे, गुणसिलए चेइए, सुहम्मे अणगारे समोसढे। जम्बू जाव पज्जुवासइ एवं वयासी–जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं दुहविवागाणं अयमट्ठे पन्नत्ते, सुहविवागाणं भन्ते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सम्पत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते?

तए णं से सुहम्मे अणगारे जंबुं अणगारं एवं वयासी– 'एवं खलु जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, तं जहा–

सुबाहू भद्दनंदी य, सुजाए य सुवासवे, तहेव जिणदासे।
धणवई य महब्बले, भद्दनंदी महच्चंदे, वरदत्ते॥

1. उस काल तथा उस समय राजगृह नामक नगर था। उसके अन्तर्गत ऋद्धि–समृद्धि से परिपूर्ण गुणशीलक नामक चैत्य–उद्यान में अनगार श्री सुधर्मा स्वामी पधारे। उनकी पर्युपासना–सेवा में संलग्न रहे हुए श्री जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया– प्रभो! यावत् मोक्ष रूप परम–स्थिति को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि दु:ख–विपाक का यह (पूर्वोक्त) अर्थ प्रतिपादित किया, तो यावत् मुक्ति को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने सुखविपाक का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?

(विनयशील अन्तेवासी) आर्य जम्बू की इस जिज्ञासा के उत्तर में अनगार श्रीसुधर्मा स्वामी, जम्बू अनगार के प्रति इस प्रकार बोले– हे जम्बू! यावत् निर्वाण प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने सुख–विपाक के दस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं। वे इस प्रकार है– (1) सुबाहु, (2)भद्रनंदी, (3) सुजात, (4) सुवासव, (5) जिनदास, (6)धनपति, (7) महाबल, (8)भद्रनंदी, (9)महचन्द्र और (10) वरदत्त।

2. 'जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स सुहविवागणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते? तए णं से सुहम्मे अणगारे जंबु अणगारं एवं वयासी–

2. हे भदन्त्! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि सुखविपाक के सुबाहुकुमार आदि दश अध्ययन प्रतिपादित किये हैं तो हे भगवन्! मोक्ष को उपलब्ध श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सुख–विपाक के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ फरमाया है?

इस प्रश्न के उत्तर में श्रीसुधर्मा स्वामी ने श्री जम्बू अनगार के प्रति इस प्रकार कहा–

3. एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे नामं णयरे होत्था–रिद्धत्थिमियसमिद्धे। तत्थ णं हत्थिसीसस्स णयरस्स बहिया उत्तर–पुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं पुप्फकरंडए णामं उज्जाणे होत्था, सव्वोउय–पुप्फ–फल–समिद्धे रम्मे, णंदणवणप्पगासे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। तथ णं कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, दिव्वे०।

तत्थ णं हत्थिसीसे णयरे अदीणसत्तू णामं राया होत्था, महया हिमवंते रायवण्णओ। तस्स णं अदीणसत्तुस्स रन्नो धारिणीपामोक्खं देवीसहस्सं ओरोहे यावि होत्था।

3. इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू! उस काल तथा उस समय में हस्तिशीर्ष नाम का एक बड़ा ऋद्ध–भवनादि के आधिक्य से युक्त, स्तिमित–स्वचक्र–परचक्र के भय से मुक्त, समृद्ध–धन–धान्यादि से परिपूर्ण नगर था। उस नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में अर्थात् ईशान कोण में सब ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फल–पुष्पादि से युक्त पुप्पकरण्डक नाम का एक (रमणीय) उद्यान था। उस उद्यान में कृतवनमाल–प्रिय नामक

यक्ष का यक्षायतन था। जो दिव्य–प्रधान एवं सुन्दर था।

वहाँ अदीनशत्रु नामक राजा राज्य करता था, जो कि राजाओं में हिमालय आदि पर्वतों के समान महान् था। अदीनशत्रु नरेश के अन्त:पुर में धारिणी प्रमुख अर्थात् धारिणी जिनमें प्रधान है, ऐसी एक हजार रानियाँ थीं।

सुबाहु का जन्म : गृहस्थजीवन

4. तए णं सा धारिणी देवी अन्नया कयाइं तंसि तारिसगंसि वासभवणंसि सीहं सुमिणे जहा मेहजम्मणं तहा भाणियव्वं, णवरं सुबाहुकुमारे जाव अलं भोगसमत्थे यावि जाणंति, जाणित्ता अम्मापियरो पंच पासायवडिंसगसयाइं करेंति, अब्भुग्गयमूसियपहसिय विव भवणं। एवं जहा महाबलस्स रन्नो। णवरं पुप्फचूला पामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकन्नासयाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेइ। तहेव पंचसयाइं दाओ, जाव उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणमत्थेहिं जाव विहरइ।

4. तदनन्तर एक समय राजकुल उचित वासभवन में शयन करती हुई धारिणी देवी ने स्वप्न में सिंह को देखा। जैसे ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र में वर्णित मेघकुमार का जन्म कहा गया है, उसी प्रकार पुत्र सुबाहु के जन्म आदि का वर्णन भी जान लेना चाहिये। यावत् सुबाहुकुमार सांसारिक कामभोगों का उपभोग करने में समर्थ हो गया। तब सुबाहुकुमार के माता–पिता ने उसे बहत्तर कलाओं में कुशल तथा भोग–भोगने में समर्थ हुआ जाना, और जानकार उसके माता–पिता ने जिस प्रकार भूषणों में मुकुट सर्वोत्तम होता है, उसी प्रकार महलों में उत्तम पाँच सौ महलों का निर्माण करवाया, जो अत्यन्त ऊँचे, भव्य एवं सुन्दर थे। उन प्रसादों के मध्य में एक विशाल भवन तैयार करवाया, इत्यादि सारा वर्णन महाबल राजा की तरह जान लेना चाहिए। महाबल की तरह सम्पन्न हुए सुबाहुकुमार के विवाह में विशेषता यह है कि – पुष्पचूला प्रमुख पाँच सौ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में उसका विवाह कर दिया गया। इसी तरह पाँच सौ का प्रीतिदान–दहेज उसे दिया गया। तदनन्तर सुबाहुकुमार ऊपर सुन्दर प्रासादों में स्थित, जिसमें मृदंग बजाये जा रहे हैं, ऐसे नाट्यादि से संलग्न होता हुआ मानवोचित मनोज्ञ विषयभोगों का यथारुचि उपभोग करने लगा।

सुबाहु का धर्म–श्रवण

5. तेणं कालेणं तेणं समएणं, समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा निग्गया। अदीणसत्तू जहा कोणिए निग्गए सुबाहुकुमारे वि जहा जमाली तहा रहेणं निग्गए, जाव धम्मो कहिओ। राया परिसा य पडिगया।

5. उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी हस्तिशीर्ष नगर में पधारे। परिषद् (जनता) धर्मदेशना सुनने के लिए नगर से निकली, जैसे महाराजा कोणिक निकला था, अदीनशत्रु राजा भी उसी तरह भगवद्दर्शन तथा देशनाश्रवण करने के लिये निकला। जमालिकुमार की तरह सुबाहुकुमार ने भी भगवान के दर्शनार्थ रथ से प्रस्थान किया। यावत् भगवान ने धर्म का प्रतिपादन किया, परिषद् और राजा धर्मदेशना–सुनकर वापस लौट गये।

गृहस्थ धर्म का स्वीकार

6. तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे 5 उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता जाव एवं वयासी– "सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं जाव जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर तलवर माडंबिय कोडंबिय इदब्भसेट्ठि सेणावइ सत्थवाह पभइओ मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया। नो अहं तहा संचाएमि मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वयाइं सत्तसिक्खावयाइं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।"

तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वयाइं सत्तसिक्खावयाइं पडिवज्जइ पडिवज्जित्ता तमेव चाउघंटं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

6. तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी के निकट धर्मकथा श्रवण तथा मनन करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ सुबाहुकुमार उठकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन, नमस्कार करने के अनन्तर कहने लगा– "भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ यावत् जिस तरह आपके श्रीचरणों में अनेकों राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि उपस्थित होकर, मुण्डित होकर तथा गृहस्थावस्था से निकलकर अनगारधर्म में दीक्षित हुए हैं, अर्थात् राजा, ईश्वर आदि ने पंच महाव्रतों को स्वीकार किया है, वैसे मैं मुण्डित होकर घर–त्यागकर अनगार अवस्था को धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। मैं पाँच अणुव्रतों तथा सात शिक्षाव्रतों का जिसमें विधान है, ऐसे बारह प्रकार के गृहस्थ–धर्म को अंगीकार करना चाहता हूँ।"

उत्तर में भगवान् ने कहा– "जैसे तुमको सुख हो वैसा करो, किन्तु इसमें देर मत करो।"

ऐसा कहने पर सुबाहुकुमार ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समक्ष पाँच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों वाले बारह प्रकार के गृहस्थ–धर्म को स्वीकार किया। अर्थात् उक्त द्वादशविध व्रतों के यथाविधि पालन करने का नियम ग्रहण किया। तदनन्तर उसी रथ पर सुबाहुकुमार सवार हुआ और सवार होकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापस चला गया।

गौतम की सुबाहुविषयक जिज्ञासा

7. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इन्दभूई णामं अणगारे जाव एवं वयासी– "अहो णं भंते! सुबाहुकुमारे इट्ठे, इट्ठरूवे, कंते, कंतरूवे, पिये, पियरूवे, मणुन्ने, मनुन्नरूवे, मणामे, मणामरूवे, सोमे, सुभगे, पियदंसणे सुरूवे, बहुजणस्स वि य णं भंते! सुबाहुकुमारे इट्ठरूवे 5 सोमे जाव सुरूवे। साहुजणस्स वि य णं! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरूवे 5 जाव सुरूवे। सुबाहुणा भंते! कुमारेण इमा एयारूवा उराला माणुस्सरिद्धी किन्ना लद्धा? किन्ना पत्ता? किन्ना अभिसमन्नागया? के वा एस आसी पुव्वभवे?" जाव किं नामए वा किं गोत्तए वा, किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा जिच्चा, किं वा समायरित्ता, कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा जेणं इमे एयारूवा माणुस्सरिद्धी लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया?

7. उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति गौतम अनगार यावत् इस प्रकार कहने लगे– "अहो भगवन्! सुबाहुकुमार बालक (बहुजन इष्ट) बड़ा ही इष्ट, इष्टरूप, कान्त, कान्तरूप, प्रिय, प्रियरूप, मनोज्ञ, मनोज्ञरूप, मनोम, मनोमरूप, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन और सुरूप–सुन्दर रूप वाला है। अहो भगवन्! यह सुबाहुकुमार साधुजनों को भी इष्ट, इष्ट रूप यावत् सुरूप लगता है।

भदन्त! सुबाहुकुमार ने यह अपूर्व मानवीय समृद्धि कैसे उपलब्ध की? कैसे प्राप्त की? और कैसे उसके सन्मुख उपस्थित हुई? सुबाहुकुमार पूर्वभव में कौन था? यावत् इसका नाम और गोत्र क्या था? किस ग्राम अथवा बस्ती में उत्पन्न हुआ था? क्या दान देकर, क्या उपभोग कर, क्या जीतकर और कैसे आचार का पालन करके और किस श्रमण या माहन के एक भी आर्यवचन को श्रवण कर सुबाहुकुमार ने ऐसी यह ऋद्धि लब्ध एवं प्राप्त की है, कैसे यह समृद्धि इसके सन्मुख उपस्थित हुई है?

इष्ट– जो चाहने योग्य हो, जिसकी इच्छा की जाय, वह इष्ट होता है।

इष्टरूप– किसी की चाह उसके विशेष कृत्य को उपलक्षित करके भी सम्भव है, अतः इष्टरूप अर्थात् उसकी आकृति ही ऐसी थी जिससे इष्ट प्रतीत होता था।

कान्त— इष्टरूपता भी अन्यान्य कारणों से सम्भवित है, अतः स्वरूपतः कान्त–रमणीय था।

कान्तरूप— सुन्दर स्वभाग वाला। (सुबाहु की इष्टता में उसका सुन्दर स्वभाव कारण था)

प्रिय–सुन्दर स्वभाव होने पर भी कर्म के प्रभाव से प्रेम उत्पन्न करने में असमर्थ रह सकता है, अतः प्रेम का उत्पादक जो हो वह प्रिय।

प्रियरूप–जिसका रूप प्रिय–प्रीतिजनक हो।

मनोज्ञ–मनोज्ञरूप–आन्तरिक वृत्ति से जिसकी शोभनता अनुभव में आवे वह मनोज्ञ, उसके रूप वाला मनोज्ञरूप कहलाता है।

मनोम, मनोमरूप–किसी की मनोज्ञता तात्कालिक भी हो सकती है, अतः मनोम विशेषण से जिसकी सुन्दरता का स्मरण बार–बार किया जाय।

सोम–रुद्रतारहित व्यक्ति सोम–सौम्य स्वभाव वाला होता है।

सुभग–वल्लभता वाला।

सुरूप–सुन्दर आकार तथा स्वभाव वाले को सुरूप कहते हैं।

प्रियदर्शन–प्रेम का जनक आकार और उस आकार वाला।

भगवान द्वारा समाधान

8. एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे नामं णयरे रिद्धत्थिमियसमिद्धे वण्णओ। तत्थ णं हत्थिणाउरे नयरे सुमुहे नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे दित्ते जाव अपरिभूए।

8. हे गौतम! उस काल तथा उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष में हस्तिनापुर नाम का एक ऋद्ध, स्तमित एवं समृद्ध नगर था। वहाँ सुमुख नाम का धनाढ्य, दीप्त यावत् अपराभूत गाथापति रहता था।

9. तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसे नामं थेरे जाइसम्पन्ने जाव पंचहिं समणसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिणाउरे णयरे, जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरंति।

9. उस काल तथा उस समय उत्तम जाति और कुल से सम्पन्न अर्थात् श्रेष्ठ मातृपक्ष एवं पितृपक्ष वाले यावत् पाँच सौ श्रमणों से परिवृत हुए धर्मघोष नामक स्थविर (जाति, श्रुत व पर्याय से वृद्ध) क्रमपूर्वक चलते हुए तथा ग्रामानुग्राम विचरते हुए हस्तिनापुर नगर के सहस्राम्रवन नामक उद्यान में पधारे। पधार कर वहाँ यथाप्रतिरूप–अनगार धर्म के अनुकूल अवग्रह (आश्रयस्थान) को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

विवेचन— स्थविर शब्द का सामान्य अर्थ वृद्ध या बड़ा साधु होता है। स्थानांग में तीन प्रकार के स्थविर बताये हैं— 1.जातिस्थविर 2.श्रुतस्थविर 3.पर्यायस्थविर। साठ वर्ष की अवस्था वाला मुनि जातिस्थविर कहलाता है। स्थानांग व समवायांग का पाठी श्रुतस्थविर गिना जाता है। कम से कम बीस वर्ष की दीक्षापर्याय वाला पर्यायस्थविर माना जाता है। (स्थानांग सूत्र स्थान 3, उ. 3) ज्ञातासूत्र आदि में गणधरों को भी स्थविर पद से सम्बोधित किया है।

10. तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी सुदत्ते नामं अणगारे उराले जाव तेउलेसे मासं मासेणं खममाणे विहरइ। तए णं सुदत्ते अणगारे मासक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ,

बीयं झाणं झियायई जहा गोयमसामी तहेव, धम्मघोसं थेरं आपुच्छइ, जाव अडमाणे सुमुहस्स गाहावइस्स गिहं अणुप्पविट्ठे।

10. उस काल और उस समय में धर्मघोष स्थविर के अन्तेवासी–शिष्य उदार–प्रधान यावत् तेजोलेश्या को संक्षिप्त किये हुए सुदत्त नाम के अनगार एक मास का क्षमण–तप करते हुए अर्थात् एक–एक मास के उपवास के बाद पारणा करते हुए विचरण कर रहे थे। एक बार सुदत्त अनगार मास–क्षमण पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हैं, दूसरे प्रहर में ध्यान करते हैं और तीसरे प्रहर में श्री गौतम स्वामी जैसे श्रमण भगवान महावीर से भिक्षार्थ गमन के लिये पूछते हैं, वैसे ही वे धर्मघोष स्थविर से पूछते हैं, यावत् भिक्षा के लिये भ्रमण करते हुए सुमुख गाथापति के घर में प्रवेश करते हैं।

11. तए णं से सुमुहे गाहावई सुदत्तं अणगारं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता सुदत्तं अणगारं सत्तट्ठपयाइं अणुग्गच्छइ, अणुग्गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयहत्थेणं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभिस्सामि त्ति कट्टु तुट्ठे पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिए वि तुट्ठे!

11. तदनन्तर वह सुमुख गाथापति सुदत्त अनगार को आते हुए देखता है और देखकर अत्यन्त हर्षित और प्रसन्न होकर आसन से उठता है। आसन से उठकर पाद–पीठ–पैर रखने के आसन से नीचे उतरता है। उतरकर पादुकाओं को छोड़ता है। छोड़कर एक शाटिक–एक कपड़ा जो बीच से सिला हुआ न हो, इस प्रकार का उत्तरासंग (उत्तरीय वस्त्र का शरीर में न्यास) करता है; उत्तरासंग करने के अनन्तर सुदत्त अनगार के सत्कार के लिये सात–आठ कदम सामने जाता है। सामने जाकर तीन बाद आदक्षिण प्रदक्षिणा करता है, वन्दन करता है, नमस्कार करके जहाँ अपना भक्तगृह–भोजनालय था वहाँ आता है। आकर अपने हाथ से विपुल अशन पान का–आहार का दान दूँगा अथवा दान का लाभ प्राप्त करूँगा, इस विचार से अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त होता है। वह देते समय भी प्रसन्न होता है और आहारदान के पश्चात् भी प्रसन्नता का अनुभव करता है।

12. तए णं तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स तेणं दुव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गाहसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं सुदत्ते अणगारे पडिलाभिए समाणे संसारे परित्तीकए, मणुस्साउए निबद्धे। गिहंसि य से इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तंजहा–

1. वसुहारा वुट्ठा
2. दसद्धवण्णे कुसुमे निवाइए
3. चेलुक्खेवे कए
4. आहयाओ देवदुन्दुहिओ
5. अंतरा वि य णं आगासंसि 'अहो दाणं अहो दाणं' घुट्ठे य।

तए णं हत्थिणाउरे णयरे सिंघाडग जाव पहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवं आइक्खइ 4–'धन्ने णं देवाणुप्पिया! सुमुहे गाहावई जाव तं धन्ने णं देवाणुप्पिया सुमुहे गहावई!'

12. तदनन्तर उस सुमुख गाथापति के शुद्ध द्रव्य (निर्दोष आहारदान) से तथा त्रिविध, त्रिकरण शुद्धि से अर्थात् मन वचन और काय की स्वाभाविक उदारता, सरलता एवं निर्दोषता से सुदत्त अनगार के प्रतिलाभित होने पर अर्थात् सुदत्त अनगार को विशुद्ध भावना द्वारा शुद्ध आहार के दान से अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए सुमुख गाथापति ने संसार को (जन्म–मरण की परम्परा को) बहुत कम कर दिया। मनुष्य आयुष्य का बन्ध

किया। उसके घर में सुवर्णवृष्टि, पाँच वर्णों के फूलों की वर्षा, वस्त्रों का उत्क्षेप (फेंकना) देवदुन्दुभियों का बजना तथा आकार में 'अहोदान' इस दिव्य उद्घोषणा का होना–ये पाँच दिव्य प्रकट हुए।

हस्तिनापुर के त्रिपथ यावत् सामान्य मार्गों में अनेक मनुष्य एकत्रित होकर आपस में एक–दूसरे से कहते थे–हे देवानुप्रियो! धन्य है सुमुख गाथापति! सुमुख गाथापति सुलक्षण है, कृतार्थ है, उसने जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया है जिसे इस प्रकार की यह मानवीय ऋद्धि प्राप्त हुई। वास्तव में धन्य है सुमुख गाथापति!

13. तए णं से सुमुहे गाहावई बहूइं वासाइं आउयं पालेइ, पालित्ता कालमासे कालं किच्चा इहेव हत्थिसीसे नयरे अदीणसत्तुस्स रन्नो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववन्ने। तए णं सा धारिणी देवी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा उहीरमाणी उहीरमाणी तहेव सीहं पासइ, सेसं तं चेव जाव उप्पिं पासाए विहरइ॥

तं एवं खलु, गोयमा! सुबाहुणा इमे एयारूवा माणुस्सरिद्धी लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया।

13. तदनन्दर वह सुमुख गाथापति सैकड़ों वर्षों की आयु का उपभोग कर काल–मास में काल करके इसी हस्तिशीर्षक नगर में अदीनशत्रु राजा की धारिणी देवी की कुक्षि में पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ (गर्भ में आया)। तत्पश्चात् वह धारिणी देवी किञ्चित् सोई और किञ्चित् जागती हुई स्वप्न में सिंह को देखती है। शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। यावत् उन्नत प्रासादों में मानव–सम्बन्धी उदार भोगों का यथेष्ट उपभोग करता विचरता है।

भगवान् ने कहा– हे गौतम! सुबाहुकुमार को उपर्युक्त महादान के प्रभाव से इस तरह की मानव–समृद्धि उपलब्ध तथा प्राप्त हुई और उसके समक्ष समुपस्थित हुई है।

14. "पभू णं भन्ते! सुबाहुकुमारे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए?"

'हंता पभू'।

तए णं से भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं से समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइं हत्थिसीसाओ नयराओ पुप्फकरंडाओ उज्जाणाओ कयवणमालप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तए णं से सुबाहुकुमारे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।

14. गौतम–प्रभो! सुबाहुकुमार आपश्री के चरणों में मुण्डित होकर, गृहस्थावास को त्याग कर अनगार धर्म को ग्रहण करने में समर्थ है?

भगवन्–हाँ गौतम! है अर्थात् प्रव्रजित होने में समर्थ है।

तदनन्तर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दना व नमस्कार किया। वन्दना–नमस्कार करके संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विहरण करने लगे।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने किसी अन्य समय हस्तिशीर्ष नगर के पुष्पकरण्डक उद्यानगत कृतवनमाल नामक यक्षायतन से विहार किया और विहार करके अन्य देशों में विचरने लगे।

इधर सुबाहुकुमार श्रमणोपासक–देशविरत श्रावक हो गया। जीव अजीव आदि तत्त्वों का मर्मज्ञ यावत् आहारादि के दान–जन्य लाभ को प्राप्त करता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

15. तए णं सुबाहुकुमारे अन्नया कयाइं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्ण– मासिणीसु जेणेव पोसहसाला तेणेव

उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं संथरेइ संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए अट्ठमभत्तिए पोसहं पडिजागरमाणे विहरइ।

15. तत्पश्चात् किसी समय वह सुबाहुकुमार चतुर्दशी, अष्टमी, उद्दिष्ट–अमावस्या और पूर्णमासी, इन तिथियों में जहाँ पौषधशाला थी–पौषधव्रत करने का स्थान–विशेष था–वहाँ आता है। आकर पौषधशाला का प्रमार्जन करता है, प्रमार्जन कर उच्चारप्रस्रवणभूमि– मल–मूत्र विसर्जन के स्थान की प्रतिलेखना–निरीक्षण करता है। दर्भसंस्तार–कुशा के आसन को बिछाता है। बिछाकर दर्भ के आसन पर आरूढ़ होता है और अट्ठमभक्त–तीन दिन का लगातार उपवास ग्रहण करता है। पौषधशाला में पौषधिक–पौषधव्रत–धारण किये हुए वह, अष्टमभक्त सहित पौषध–अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों में करने योग्य जैन श्रावक का व्रत–विशेष अथवा आहारादि के त्यागपूर्वक किये जाने वाले धार्मिक अनुष्ठान–विशेष का यथाविधि पालन करता हुआ अर्थात् तेला–पौषध करके विहरण करता है।

16. तए णं तस्स सुबाहुस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पणे धन्ना णं ते गामागर नगर जाव सन्निसेवा जत्थ णं समणे भगवं महावीरे विहरइ।

धन्ना णं ते राईसर जाव सत्थवाहप्पभइओ जे णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयंति।

धन्ना णं ते राईसर जाव सत्थवाहप्पभइओ जे णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं पडिसुणंति।

तं जइ णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागच्छेज्जा जाव विहरेज्जा, तए णं अहं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वएज्जा।

16. तदनन्तर मध्यरात्रि में धर्मजागरण के कारण जागते हुए सुबाहुकुमार के मन में यह आन्तरिक विचार, चिन्तन, कल्पना, इच्छा एवं मनोगत संकल्प उठा कि–वे ग्राम, आकर, नगर यावत् सन्निवेश धन्य हैं जहाँ पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विचरते हैं।

वे राजा, ईश्वर, यावत् सार्थवाह आदि भी धन्य हैं जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट मुण्डित होकर प्रव्रजित होते हैं।

वे राजा, ईश्वर आदिक धन्य हैं जो श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास धर्म–श्रवण करते हैं।

सो यदि श्रमण भगवान महावीर स्वामी पूर्वानुपूर्वी–क्रमशः गमन करते हुए ग्रामानुग्राम विचरते हुए, यहाँ पधारें तो मैं गृह त्याग कर श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित हो जाऊँ।

17. तए णं समणे भगवं महावीरे सुबाहुस्स कुमारस्स इमं एयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव पुप्फकरंडे उज्जाणे जेणेव कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

परिसा, राया निग्गया। तए णं तस्स सुबाहुस्स कुमारस्स तं महया जहा पढमं तहा निग्गओ। धम्मो कहिओ। परिसा राया पडिगया।

17. तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर स्वामी सुबाहु कुमार के इस प्रकार के संकल्प को जानकर क्रमशः ग्रामानुग्राम विचरते हुए जहाँ हस्तिशीर्षनगर था, और जहाँ पुष्पकरण्डक नामक उद्यान था, और जहाँ

कृतवनमालप्रिय यक्ष का यक्षायतन था, वहाँ पधारे एवं यथा प्रतिरूप–अनगार वृत्ति के अनुकूल अवग्रह–स्थानविशेष को ग्रहण कर संयम व तप से आत्मा को भावित करते हुए अवस्थित हुए।

तदनन्तर परिषदा व राजा दर्शनार्थ निकले। सुबाहुकुमार भी पूर्व ही की तरह बड़े समारोह के साथ भगवान की सेवा में उपस्थित हुआ। भगवान ने उस परिषद् तथा सुबाहुकुमार को धर्म का प्रतिपादन किया। परिषद् और राजा धर्मदेशना सुनकर वापिस चले गये।

18. तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे। जहा मेहो तहा अम्मापियरो आपुच्छइ। निक्खणाभिसेओ तहेव जाव अणगारे जाव इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी।

18. सुबाहुकुमार श्रमण भगवान महावीर के पास से धर्म श्रवण कर उसका मनन करता हुआ (ज्ञाताधर्मकथा में वर्णित) श्रेणिक राजा के पुत्र मेघकुमार की तरह अपने माता–पिता से अनुमति लेता है। तत्पश्चात् सुबाहुकुमार का निष्क्रमण–अभिषेक मेघकुमार ही की तरह होता है। यावत् वह अनगार हो जाता है, ईर्यासमिति का पालक यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन जाता है।

19. तए णं से सुबाहू अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठऽट्ठमतवोविहाणेहिं अप्पाणं भावित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाइं छेदित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववन्ने।

19. तदनन्तर सुबाहु अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास से सामायिक आदि एकादश अङ्गों का अध्ययन करते हैं। अनेक उपवास, बेला, तेला आदि नाना प्रकार के तपों के आचरण से आत्मा को वासित करके अनेक वर्षों तक श्रामण्यपर्याय (साधुवृत्ति) का पालन कर एक मास की संलेखना (एक अनुष्ठान–विशेष जिसमें शारीरिक व मानसिक तप द्वारा कषाय आदि का नाश किया जाता है) के द्वारा अपने–आपको आधारित कर साठ भक्तों–भोजनों का अनशन द्वारा छेदन कर अर्थात 29 दिन का अनशन कर आलोचना व प्रतिक्रमणपूर्वक समाधि को प्राप्त होकर कालमास में काल करके सौधर्म देवलोक में देव रूप से उत्पन्न हुए।

20. से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिइ, लभिहित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिइ, बुज्झिहित्ता तहारूवाणं थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वइस्सइ। से णं तत्थ बहूइं वासाइं सामण्ण परियागं पाउणिहिइ, पाउणिहित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सणंकुमारे कप्पे देवत्ताए उव्ववण्णे।

से णं ताओ देवलोगाओ माणुस्सं जाव पव्वजा। बंभलोए। तओ माणुस्सं। महासुक्के। तओ माणुस्सं, आणए देवे। तओ माणुस्सं, तओ आरणे। तओ माणुस्सं, सव्वट्ठसिद्धे।

से णं तओ अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे जाव अड्ढे जहा दढपइन्ने, सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।

20. तदनन्तर वह सुबाहुकुमार का जीव सौधर्म देवलोक से आयु, भव और स्थिति के क्षय होने पर व्यवधान रहित देव शरीर को छोडकर सीधा मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा। प्राप्त करके शंकादि दोषों से रहित केवल–बोधि का लाभ करेगा, बोधि उपलब्ध कर तथारूप स्थविरों के पास मुंडित होकर साधुधर्म में प्रव्रजित हो जाएगा। वहाँ वह अनेक वर्षों तक श्रामण्यपर्याय–संयम व्रत का पालन करेगा और आलोचना तथा प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त होगा। काल धर्म को प्राप्त कर सनत्कुमार नामक तीसरे देवलोक में देवता के रूप से उत्पन्न होगा।

वहाँ से पुनः मनुष्य भव प्राप्त करेगा। दीक्षित हेकर यावत् महाशुक्र नामक देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यव कर फिर मनुष्य–भव में जन्म लेगा और पूर्व की ही तरह दीक्षित होकर यावत् आनत नामक नवम् देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ की भवस्थिति को पूर्ण कर मनुष्य–भव में आकर दीक्षित हो आरण नाम के ग्यारहवें देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यव कर मनुष्य–भव को धारण करके अनगार–धर्म का आराधन कर शरीरान्त होने पर सर्वार्थसिद्ध नामक विमान में उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यवकर सुबाहुकुमार का वह जीव व्यवधानरहित महाविदेह क्षेत्र में सम्पन्न कुलों में से किसी कुल में उत्पन्न होगा। वहाँ दृढप्रतिज्ञ की भाँति चारित्र प्राप्त कर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा, परिनिर्वृत्त होगा तथा सभी दुःखों से मुक्ति को प्राप्त करेगा।

21. एवं खलु जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। त्ति बेमि।

21. आर्य सुधर्मा स्वामी कहते हैं– हे जम्बू! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने सुखविपाक अंग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।

ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

द्वितीय अध्ययन – भद्रनन्दी

1. विईयस्स उक्खेवो।

1. द्वितीय अध्ययन की प्रस्तावना पूर्ववत् समझ लेनी चाहिये।

2. एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभपुरे णामं नयरे थूभकरंडगउज्जाणं। धन्नो जक्खो। धणवहो राया। सरस्सई देवी।

सुमिणदंसणं, कहणं, जम्मं, बालत्तणं कलाओ य।
जोव्वणं पाणिग्गहणं, दाओ पासाय भोगा य॥

जहा सुबाहुस्स। नवरं भद्दनंदी कुमारे। सिरिदेवी पामोक्खाणं पंचसया सामिस्स समोसरणं। सावगधम्मं पडिवज्जे। पुव्वभवपुच्छा। महाविदेहवासे पुंडरीकिणी नयरीए विजय कुमारे। जुगबाहू तित्थयरे पडिलाभिए। माणुस्साउए निबद्धे। इहं उववण्णे। सेसं जहा सुबाहुस्स जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ। एवं खलु जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं बिईयस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

2. जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया कि श्रमण भगवान महावीर ने सुखविपाक के दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है? उत्तर में सुधर्मा स्वामी कहते हैं– हे जम्बू! उस काल तथा उस समय में ऋषभपुर नाम का एक नगर था। वहाँ स्तूपकरण्डक नामक उद्यान था। धन्य नामक यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ धनावह नाम का राजा राज्य करता था। उसकी सरस्वती देवी नाम की रानी थी। महारानी का स्वप्न–दर्शन, पति से स्वप्न–वृत्तान्तकथन, समय आने पर बालक का जन्म, बालक का बाल्यावस्था में कलाएँ सीखकर यौवन को प्राप्त होना, तदनन्तर विवाह होना, माता–पिता के द्वारा दहेज देना और ऊँचे प्रासादों में अभीष्ट भोगोपभोगों का उपयोग करना, आदि सभी वर्णन सुबाहुकुमार ही की तरह जानना चाहिये। उसमें अन्तर केवल इतना है कि सुबाहुकुमार के बदले बालक का नाम 'भद्रनन्दी' था। उसका श्रीदेवी प्रमुख पाँच सौ देवियों के साथ (श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ) विवाह हुआ। तदनन्तर महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ, भद्रनन्दी ने श्रावकधर्म अंगीकार किया। गौतम स्वामी द्वारा उसके पूर्वभव सम्बन्धी प्रश्न करने पर भगवान् ने इस प्रकार उत्तर दिया–

महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत पुण्डरीकिणी नाम की नगरी में विजय नामक कुमार था। उसके द्वारा भी युगबाहु तीर्थंकर को प्रतिलाभित करना–दान देना, मनुष्य आयुष्य का बन्ध होना, यहाँ भद्रनन्दी के रूप में जन्म लेना, यह सब सुबाहुकुमार ही की तरह जान लेना चाहिये। यावत् वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होग, बुद्ध होगा, मुक्त होगा, निर्वाण पद को प्राप्त करेगा व सर्व दु:खों का अन्त करेगा।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन – सुजातकुमार

1. तईयस्स उक्खेवो।

1. तृतीय अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व जान लेनी चाहिये।

2. वीरपुरे णामं नयरे। मणोरमे उज्जाणे। वीरकण्हेजक्खे, मित्ते राया। सिरीदेवी। सुजाए कुमारे। बलसिरीपामोक्खाणं पंचसयाकण्णा। सामीसमोसरिए। पुव्वभवपुच्छा। उसुयारे नयरे। उसभदत्ते गाहावई। पुप्फदंते अणगारे पडिलाभिए। माणुस्साउए निबद्धे। इह उववण्णे जाव महाविदेहवासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।

2. श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा– हे जम्बू! वीरपुर नामक नगर था। वहाँ मनोरम नाम का उद्यान था। महाराज वीरकृष्णमित्र राज्य करते थे। श्रीदेवी नामक उनकी रानी थी। सुजात नाम का कुमार था। बलश्री प्रमुख 500 श्रेष्ठ राज–कन्याओं के साथ सुजातकुमार का पाणिग्रहण संस्कार हुआ। श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे। सुजातकुमार ने श्रावक–धर्म स्वीकार किया। श्री गौतम स्वामी ने पूर्वभव की जिज्ञासा प्रकट की। श्रमण भगवान महावीर ने इस तरह पूर्वभव का वृत्तान्त कहा–

इषुकासार नामक नगर था। वहाँ ऋषभदत्त गाथापति रहता था। उसने पुष्पदत्त अनगार को निर्दोष आहार दान दिया। शुभ मनुष्य आयुष्य का बन्ध हुआ। आयु पूर्ण होने पर यहाँ सुजातकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ यावत् महाविदेह क्षेत्र में चारित्र ग्रहण कर सिद्ध पद को प्राप्त करेगा।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

चतुर्थ अध्ययन – सुवासवकुमार

1. चउत्थस्स उक्खेवो।

1. चतुर्थ अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व जान लेनी चाहिये।

2. विजयपुरे नयरे। नन्दणवणे उज्जाणे। असोगो जक्खो। वासवदत्ते राया। कण्हसिरीदेवी। सुवासवे कुमारे। भद्दापामोक्खाणं पंचसयाकण्णा जाव पुव्वभव पुच्छा। कोसंबी नयरी। धणपालो राया। वेसमणभद्दे अणगारे पडिलाभिए। इहं उववन्ने। जाव सिद्धे।

2. सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया–हे जम्बू! विजयपुर नाम का एक नगर था। वहाँ नन्दनवन नाम का उद्यान था। उस उद्यान में अशोक नामक यक्ष का एक यक्षायतन था। विजयपुर नगर के राजा का नाम वासवदत्त था। उसकी कृष्णादेवी नाम की रानी थी। सुवासवकुमार नामक राजकुमार था। भद्रा–प्रमुख पाँच सौ राजाओं की श्रेष्ठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। सुवासवकुमार ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव का वृत्तान्त पूछा। उत्तर में श्री भगवान ने फरमाया–

गौतम! कौशाम्बी नाम की नगरी थी। वहाँ धनपाल नामक राजा था। उसने वैश्रमणभद्र अनगार को निर्दोष आहार का दान दिया, उसके प्रभाव से मनुष्य–आयुष्य का बन्ध हुआ यावत् यहाँ सुवासवकुमार के रूप में जन्म लिया है, यावत् इसी भव में सिद्धि–गति को प्राप्त हुए।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

पंचम अध्ययन – जिनदास

1.पंचमस्स उक्खेवो।

1.पंचम अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व जान लेनी चाहिये।

2.सोगन्धिया नयरी। नीलासोगे उज्जाणे। सुकालो जक्खो। अप्पडिहय राया। सुकण्हा देवी। महाचंदे कुमारे। तस्स अरहदत्ता भारिया। जिणदासो पुत्तो। तित्थयरागमणं। जिणदासो पुव्वभव पुच्छा। मज्झमिया नयरी। मेहरहे राया। सुधम्मे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

2.हे जम्बू! सौगन्धिका नाम की नगरी थी। वहाँ नीलाशोक नाम का उद्यान था। उसमें सुकाल नाम के यक्ष का यक्षायतन था। उक्त नगरी में अप्रतिहत नामक राजा राज्य करते थे। सुकृष्णा नाम की उनकी भार्या थी। उनके पुत्र का नाम महाचन्द्रकुमार था। उसकी अर्हद्दत्ता नाम की भार्या थी। जिनदास नाम का पुत्र था। किसी समय श्रमण भगवान महावीर का पदार्पण हुआ। जिनदास ने भगवान से द्वादशविध गृहस्थ धर्म स्वीकार किया। श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव की जिज्ञासा प्रकट की और भगवान ने इसके उत्तर में इस प्रकार फरमाया—

हे गौतम! माध्यमिका नाम की नगरी थी। महाराज मेघरथ वहाँ के राजा थे। सुधर्मा अनगार को महाराजा मेघरथ ने भावपूर्वक निर्दोष आहार दान दिया। मनुष्य भव के आयुष्य का बन्ध किया और यहाँ पर जन्म लेकर यावत् इसी जन्म में सिद्ध हुआ।

॥ पंचम अध्ययन समाप्त ॥

षष्ठ अध्ययन - धनपति

1. छट्ठस्स उक्खेवो।

1. छट्ठे अध्ययन की प्रस्तावना भी पूर्ववत् ही समझ लेनी चाहिये।

2. कणगपुरे नयरे। सेयासोए उज्जाणे। वीरभद्दो जक्खो। पियचंदे राया। सुभद्दा देवी। वेसमणे कुमारे जुवराया। सिरीदेवी पामोक्खाणं पंचसया कण्णा। तित्थयरागमणं। धणवई जुवरायपुत्ते जाव पुव्वभव पुच्छा। मणिवइया नयरी। मित्तो राया। संभूइविजए अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

2. हे जम्बू! कनकपुर नाम का नगर था। वहाँ श्वेताशोक नामक एक उद्यान था। वहाँ वीरभद्र नाम के यक्ष का यक्षायतन था। कनकपुर का राजा प्रियचन्द्र था, उसकी रानी का नाम सुभद्रादेवी था। युवराज पदासीन पुत्र का नाम वैश्रमणकुमार था। उसका श्रीदेवी प्रमुख 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ था। किसी समय तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी पधारे। युवराज के पुत्र धनपति कुमार ने भगवान से श्रावकों के व्रत ग्रहण किए यावत् गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव की पृच्छा की। उत्तर में भगवान ने कहा—

धनपतिकुमार पूर्वभव में मणिचयिका नगरी का राजा था। उसका नाम मित्र था। उसने संभूतिविजय नामक अनगार को शुद्ध आहार से प्रतिलाभित किया यावत् इसी जन्म में वह सिद्धगति को प्राप्त हुआ।

॥ षष्ठ अध्ययन समाप्त ॥

सप्तम अध्ययन – महाबल

1. सत्तमस्स उक्खेवो।

1. सातवें अध्याय का उत्क्षेप पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिये।

2. महापुरे नयरे। रत्तासोगे उज्जाणे। रत्तपाओ जक्खो। बले राया। सुभद्दा देवी। महब्बले कुमारे। रत्तवईपामोक्खाणं पंचसयाकण्णा तित्थयरागमणं जाव पुव्वभव पुच्छा। मणिपुरे नयरे। नागदत्ते गाहावई। इन्ददत्ते अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

2. हे जम्बू! महापुर नामक नगर था। वहाँ रक्ताशोक नाम का उद्यान था। उसमें रक्तपाद यक्ष का आयतन था। नगर में महाराज बल का राज्य था। सुभद्रा देवी नाम की उसकी रानी थी। महाबल नामक राजकुमार था। उसका रक्तवती आदि 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह किया गया।

उस समय तीर्थंकर भगवान श्री महावीर स्वामी पधारे। तदनन्तर महाबल राजकुमार का भगवान से श्रावकधर्म अङ्गीकार करना, गणधर देव का भगवान से उसका पूर्वभव पूछना तथा भगवान का प्रतिपादन करते हुए कहना—

गौतम! मणिपुर नाम का नगर था। वहाँ नागदेव नाम का गाथापति रहता था। उसने इन्द्रदत्त नाम के अनगार को पवित्र भावनाओं से निर्दोष आहार का दान देकर प्रतिलाभित किया। मनुष्य आयुष्य का बन्ध करके यहाँ पर महाबल के रूप में उत्पन्न हुआ। तदनन्तर उसने श्रमणदीक्षा स्वीकार कर यावत् सिद्धगति को प्राप्त किया।

॥ सप्तम् अध्ययन समाप्त ॥

अष्टम अध्ययन – भद्रनन्दी

1.अट्ठमस्स उक्खेवो।

1.अष्टम अध्याय का उत्क्षेप पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिये।

2.सुघोसे नयरे। देवरमणे उज्जाणे। वीरसेणो जक्खो। अज्जुणो राया। रत्तवई देवी। भद्दनन्दी कुमारे। सिरिदेवी पामोक्खाणं पंचसया कण्णा जाव पुव्वभव पुच्छा। महाघोसे नयरे। धम्मघोसे गाहावई। धम्मसीहे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

2. सुघोष नामक नगर था। वहाँ देवरमण नामक उद्यान था। उसमें वीरसेन नामक यक्ष का यक्षायतन था। सुघोष नगर में अर्जुन नामक राजा राज्य करता था। उसके रक्तवती नाम की रानी थी और भद्रनन्दी नाम का राजकुमार था। उसका श्रीदेवी आदि 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। किसी समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी का वहाँ पदार्पण हुआ। भद्रनन्दी ने भगवान की देशना से प्रभावित होकर श्रावकधर्म अङ्गीकार किया। श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के सम्बन्ध में पृच्छा की और भगवान ने उत्तर देते हुए फरमाया—

हे गौतम! महाघोष नगर था। वहाँ धर्मघोष नाम का गाथापति रहता था। उसने धर्मसिंह नामक मुनिराज को निर्दोष आहार के दान से प्रतिलाभित किया। मनुष्य–भव के आयुष्य का बन्ध किया और यहाँ पर उत्पन्न हुआ। यावत् साधुधर्म का यथाविधि अनुष्ठान करके श्री भद्रनन्दी अनगार ने बन्धे हुए कर्मों का आत्यन्तिक क्षय कर मोक्ष पद को प्राप्त किया।

॥ अष्टम अध्ययन समाप्त ॥

नवम अध्ययन – महाचन्द्र

1. नवमस्स उक्खेवो।

1. नवम् अध्याय का उत्क्षेप यथापूर्व जान लेना चाहिये।

2. चम्पा नयरी। पुण्णभद्दे उज्जाणे। पुण्णभद्दो जक्खो। दत्ते राया। रत्तवई देवी। महचंदे कुमारे जुवराया। सिरीकन्तापामोक्खाणं पंचसया कण्णा जाव पुव्वभव पुच्छा। तिगिच्छिया नयरी। जियसत्तु राया। धम्मवीरिए अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।

2. हे जम्बू! चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नामक सुन्दर उद्यान था। उसमें पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ के राजा का नाम दत्त था और रानी का नाम रक्तवती था। उनके युवराज पदासीन महाचन्द्र नामक राजकुमार था। उसका श्रीकान्ता प्रमुख 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था।

एक दिन पूर्णभद्र उद्यान में श्रमण भगवान महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। महाचन्द्र ने उनसे श्रावकों के बारह व्रतों को ग्रहण किया। गणधर देव श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की। भगवान महावीर स्वामी ने उत्तर देते हुए फरमाया—

हे गौतम! चिकित्सिका नाम की नगरी थी। महाराज जितशत्रु वहाँ राज्य करते थे। उसने धर्मवीर्य अनगार को प्रासुक–निर्दोष आहार पानी का दान देकर प्रतिलाभित किया। मनुष्य–आयुष्य को बाँधकर यहाँ उत्पन्न हुआ। यावत् श्रामण्य–धर्म का यथाविधि अनुष्ठान करके महाचन्द्र मुनि बन्धे हुए कर्मों का समूल क्षय कर परमपद को प्राप्त हुए।

॥ नवम् अध्ययन समाप्त ॥

दशम अध्ययन – वरदत्त

1.जइ णं भंते! दसमस्स उक्खेवो।

1.दशम अध्याय की प्रस्तावना पूर्व की भांति ही जाननी चाहिये।

2.एवं खलु, जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं साइए नामं नयरे होत्था। उत्तरकुरू उज्जाणे। पासामिओ जक्खो। मित्तनन्दी राया। सिरीकन्ता देवी। वरदत्ते कुमारे। वीरसेणा पामोक्खाणं पंचदेवीसया कण्णा। तित्थयरागमणं। सावगधम्मं। पुव्वभवपुच्छा। सयदुवारे नयरे। विमलवाहणे राया। धम्मरुइ अणगारे पडिलाभिए, मणुस्साउए निबद्धे। इहं उववण्णे। सेसं जहा सुबाहुस्स कुमारस्स। चिन्ता जाव पव्वज्जा। कप्पन्तरिए जाव सव्वट्ठसिद्धे। तओ महाविदेहे जहा दढपइन्नो जाव सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।

'एवं खलु, जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेण जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं दसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते।'

सेवं भन्ते! सेवं भंते! सुहविवागा।

2.हे जम्बू! उस काल तथा उस समय में साकेत नाम का एक विख्यात नगर था। वहाँ उत्तरकुरु नाम का सुन्दर उद्यान था। उसमें पाशमृग नामक यक्ष का यक्षायतन था। उस नगर के राजा मित्रनन्दी थे। उनकी श्रीकान्ता नाम की रानी थी। उनका वरदत्त नाम का राजकुमार था। कुमार वरदत्त का वरसेना आदि 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण–संस्कार हुआ था। तदनन्तर किसी समय उत्तरगुरु उद्यान में श्रमण भगवान महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। वरदत्त ने देशना श्रवण कर भगवान से श्रावकधर्म अङ्गीकार किया। गणधर श्री गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान श्री महावीर ने वरदत्त के पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार फरमाया–

हे गौतम! शतद्वार नाम का नगर था। उसमें विमलवाहन नामक राजा राज्य करता था। उसने एकदा धर्मरुचि अनगार को आते हुए देखकर उत्कट भक्ति भावों से निर्दोष आहार का दान कर प्रतिलाभित किया। शुभ मनुष्य आयुष्य का बन्ध किया। वहाँ की भवस्थिति को पूर्ण करके इसी साकेत नगर में महाराजा मित्रनन्दी की रानी श्रीकान्ता की कुक्षि से वरदत्त के रूप में उत्पन्न हुआ।

शेष वृत्तान्त सुबाहुकुमार की तरह ही समझ लेना चाहिये। अर्थात् भगवान के विहार कर जाने के बाद पौषधशाला में पौषधोपवास करना, भगवान के पास दीक्षित होने वालों को पुण्यशाली बतलाना और भगवान के पुनः पधारने पर दीक्षित होने का संकल्प करना। यह सब सुबाहुकुमार व वरदत्त कुमार दोनों के जीवन में समान ही था। तदनन्तर दीक्षित होकर संयमव्रत का पालन करते हुए मनुष्य–भव से देवलोक और देवलोक से मनुष्य–भव, देवलोकों में भी बीच–बीच के एक–एक देवलोक को छोड़कर सुबाहु के समान ही गमनागमन करते हुए अन्त में सुबाहुकुमार की ही तरह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर, वहाँ पर चारित्र की सम्यक् आराधना से कर्मरहित होकर मोक्षगमन भी समान ही समझना चाहिये।

वरदत्त कुमार का जीव स्वर्गीय तथा मानवीय, अनेक भवों को धारण करता हुआ अन्त में सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होगा, वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न हो, दृढ़प्रतिज्ञ की तरह सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा, परिनिर्वृत्त होगा यावत् सभी दुक्खों का अन्त करेगा।

हे जम्बू! इस प्रकार यावत् मोक्षसम्प्रात श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सुखविपाक के दशम अध्ययन का अर्थ प्रतिपादन किया, ऐसा मैं कहता हूँ।

जम्बू स्वामी– भगवन! आपका सुखविपाक का कथन, जैसे कि आपने फरमाया है, वैसा ही है, वैसा ही है।

॥ दशम अध्ययन समाप्त ॥

॥ सुखविपाक समाप्त ॥

सुखविपाक सूत्र से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर

जिज्ञासा–1 सुखविपाक सूत्र में मुक्ति में जाने वाले तथा देवलोक में जाने वाले कितने–कितने महापुरुषों का वर्णन है?

समाधान– सुखविपाक सूत्र में निम्न अध्ययनों में वर्णित निम्न महापुरुष उसी भव में मोक्ष में पधारे–

अध्ययन–4 : सुवासव कुमार
अध्ययन–5 : जिनदास पुत्र
अध्ययन–6 : धनपति कुमार
अध्ययन–7 : महाबल कुमार
अध्ययन–8 : भद्रनन्दी कुमार
अध्ययन–9 : महचन्द्र कुमार

निम्न अध्ययनों में वर्णित निम्न महापुरुष देवलोक में पधारे–

अध्ययन–1 : सुबाहुकुमार
अध्ययन–2 : भद्रनन्दी कुमार
अध्ययन–3 : सुजात कुमार
अध्ययन–10 : वरदत्त कुमार

जिज्ञासा–2 सुपात्र दान का क्या फल होता है?

समाधान– भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 6 में स्पष्ट वर्णन है कि "तथारूप श्रमण–माहण को प्रासुक एषणीय आहार बहराते हुए श्रमणोपासक (दाता) एकान्त निर्जरा का लाभ प्राप्त करता है। किंचित् भी पाप–कर्म का बन्ध नहीं करता।

शतक 7 उद्देशक 1 में कहा है कि सन्तों को निर्दोष आहार बहराते हुए साधक स्वयं भी समाधि प्राप्त करता है तथा श्रमण–निर्ग्रन्थों को भी समाधि प्रदान करता है। साथ ही–

जीवियं चयइ, दुच्चयं चयइ, दुक्करं करेइ, दुल्लहं लहइ, बोहिं बुज्झइ, तओ पच्छा सिज्झइ जाव अंतं करेइ।

अर्थात्–

जीवियं चयइं : वह कर्मो की दीर्घ स्थिति को ह्रस्व (कम) करता है। (अपवर्तन)

दुच्चयं चयइ : कर्म द्रव्य–संचय का त्याग करता है।

दुक्करं करेइ : अपूर्वकरण के द्वारा ग्रन्थि–भेद करता है।

दुल्लहं लइह : अनिवृत्तिकरण को प्राप्त करता है।

बोहिं बुज्झइ : सम्यक्त्व–लाभ को प्राप्त करता है।

सिज्झइ जाव अंतं करेइ : समस्त दु:खों का अन्त करता है।

'संसारे परित्तीकए' अर्थात् संसार को परीत (सीमित) कर लेता है। ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के अनुसार 'अपडिलद्धे सम्मत्त रयणं पडिलब्भइ' अर्थात् अप्राप्त सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेता है। प्रथम बार सम्यग्दर्शन

प्राप्त करना 'परीत संसारी' कहलाता है।

प्रज्ञापना पद 18 में परीत संसारी की काय स्थिति उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल की बतलायी है। यद्यपि भगवती शतक 3 उद्देशक 1 में सनत्कुमार इन्द्र को परीत कहा, वह विशेष परीत की अपेक्षा समझना चाहिये।

इतिहास में वर्णन मिलता है कि भगवान ऋषभदेव के जीव ने धन्नासार्थवाह के भव में तथा भगवान महावीर के जीव ने नयसार के भव में श्रमण–निर्ग्रन्थों को सुपात्र दान देकर संसार को सीमित कर लिया था।

जिज्ञासा–3 सुबाहुकुमार ने मनुष्यायु का बन्ध किया, उस समय वह सम्यग्दृष्टि था अथवा मिथ्यादृष्टि?

समाधान– भगवती सूत्र शतक 30– समवशरण के अधिकार में उल्लेख है कि क्रियावादी मनुष्य केवल वैमानिक का आयुष्य बान्धता है।

सूत्रकृतांग सूत्र में यद्यपि क्रियावादी को मिथ्यादृष्टि बतलाकर उसके 180 भेद बतलाये हैं। तथापि वहाँ क्रियावादी का अर्थ एकान्त क्रियावादी मानना चाहिये। भगवती सूत्र शतक 30 में वर्णित क्रियावादी से तात्पर्य सम्यग्दृष्टि से लिया गया है।

भगवती सूत्र शतक 26 उद्देशक–1 में कहा है कि सज्ञानी, सम्यग्दृष्टि आदि 6 बोलों में से आयुष्य बान्धने वाले मनुष्य को कम से कम एक बार और आयुष्य बान्धनी ही पड़ती है। (बान्धी थी, बान्धता है और बान्धेगा)

इनसे यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि सुबाहुकुमार वैमानिक देवलोक में जा रहा है। जबकि अध्ययन–4 से 9 तक में वर्णित 6 जीव सुपात्रदान के पश्चात् मनुष्यायु को बान्धकर उससे अगले भव में मनुष्य बनकर मोक्ष में चले गये। अतः स्पष्ट है कि सुबाहुकुमार ने पूर्व भव–सुमुख गाथापति के भव में आयुष्य सम्यक्त्व अवस्था में नहीं बान्धी।

तीसरे कर्मग्रन्थ में चतुर्थ गुणस्थानवर्ती मनुष्य के 71 प्रकृतियों का बन्ध बतलाया है। जिसमें सामान्य बन्ध–77 में से मनुष्यत्रिक, औदारिक द्विक और वज्रऋषभ नाराच संहनन, इन छः प्रकृतियों का अन्तर पड़ता है। अतः स्पष्ट है कि चौथे गुणस्थान में मनुष्यायु का बन्ध नहीं होता।

सुखविपाक सूत्र में प्रमुख–प्रमुख बातों का उल्लेख होने से 'संसारे परित्तीकए' के पश्चात् मिथ्यात्व में गिरने का उल्लेख नहीं होने से भ्रान्ति उत्पन्न हो सकती है। किन्तु 'मणुस्सुए निबद्धे' अर्थात् मनुष्यायु का बन्ध स्पष्ट करता है कि वे शीघ्र ही प्रथम गुणस्थान में गिर गए।

जिज्ञासा–4 सुपात्र दान किसे कहते हैं?

समाधान– आचार्य भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी म.सा. ने अपनी स्वरचित लावणी में कहा–

सुपात्र दान के तीन भेद कर लेना, भेद कर लेना।
साधु, श्रावक, समदृष्टि को लेना।
ज्ञान दान और अभयदान रस लीजे–2
पात्र दान के भूषण ध्यान धरीजे।
चित्त वित्त और पात्र की महिमा गाई–2
कहे मुनीश्वर सुनो बाई और भाई–2
षट्कर्माराधन की करो कमाई॥

अर्थात् सुपात्र दान के तीन भेद होते हैं– (1) उत्कृष्ट– तथारूप श्रमण–माहण, (2) मध्यम–

प्रतिमाधारी व व्रती श्रावक, (3) जघन्य– सम्यग्दृष्टि।

तत्त्वार्थ सूत्र में दान के बारे में कहा है कि–

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गोदानम्।
विधि-द्रव्य-दातृ-पातृ-तद्विशेषाद्।

अर्थात् अनुग्रह के लिये स्वयं की आसक्ति का त्याग करते हुए देना 'दान' है। दान की विधि, द्रव्य, दाता और पात्र से दान में विशेषताएँ आ जाती हैं।

सुखविपाक सूत्र अध्ययन–1 में कहा है–

पडिलाभिस्सामि त्ति कुट्टु तुट्ठे, पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे,
पडिलाभिएति वि तुट्ठे।

अर्थात् देने के पहले, देते समय और देने के बाद, तीनों समय यदि उत्कृष्ट भावना रहे तो वह दान उत्कृष्ट हो जाता है। मम्मण सेठ ने पूर्व भव में दान दिया, किन्तु देने के बाद पश्चात्ताप कर लिया। दान के प्रभाव से सामग्री तो मिली किन्तु पश्चात्ताप के कारण मिली हुई सामग्री का सदुपयोग नहीं कर पाया। उसके लिये वह सामग्री पापानुबन्धी पुण्य हो गयी।

भगवती सूत्र शतक 5 उद्देशक 6 में वर्णन है कि अनेषणीय, अप्रासुक आहार को बहराने से अल्पायु का बन्ध होता है। ठाणांग सूत्र– 3/1/7 में भी उल्लेख है कि हिंसा, झूठ आदि का सेवन करना तथा साधु को आधाकर्मी आहार देना, अल्पायु बन्ध के कारण हैं।

जिज्ञासा–5 'एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा' का क्या तात्पर्य है?

समाधान– सुबाहुकार को पूर्व भव में किसी एक आर्य (निरवद्य) वचन को सुनने से मनुष्य–भव सम्बन्धी ऋद्धि प्राप्त हुई। किसी न किसी सद् आचरण–दानादि या वीतरागवाणी श्रवण से जीव के पुण्य का उपार्जन होता है, जिससे उसे मनुष्य सम्बन्धी ऋद्धि प्राप्त होती है।

पूज्य आचार्य श्री आसकरणजी म.सा. ने अपनी रचना में कहा भी है–

एक वचन जो सद्गुरु केरो, जो पेठे दिल मांय रे प्राणी।
नरक गति में ते नहीं जावे, एम कहे जिनराय रे प्राणी॥

दशाश्रुतस्कन्ध की नवीं दशा में निदान का स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि प्रारम्भ के 4 निदान (भोग के निदान) करने वाला तो शास्त्र का श्रवण भी प्राप्त नहीं कर सकता है।

जिज्ञासा–6 एक बार आराधक बनने के बाद क्या वह जीव विराधक बन सकता है?

समाधान– एक बार आराधक बनने के बाद जीव विराधक भी बन सकता है। (भगवती शतक 8 उद्देशक 10 व प्रज्ञापना सूत्र पद 15 के अनुसार) किन्तु विराधक बनने पर भी 15 भवों का तो अतिक्रमण नहीं करता है। 15 भव भी वैमानिक और मनुष्य इन दो दण्डकों के ही करता है। अन्य 22 दण्डकों के तो हमेशा के लिये ताले लगा देता है।

सम्यग्दृष्टि के ज्ञान की स्थिति उत्कृष्ट 66 सागरोपम झाझेरी होती है। उसके बाद तो जीव को मिथ्यात्व में आना ही पड़ता है। सुबाहुकुमार के 'परीत संसारी' बनने के बाद के वैमानिक देवलोकों की स्थिति देखें तो ज्ञात होगा कि 66 सागरोपम से बहुत अधिक स्थिति होती है तथा 'केवलं बोहि बुज्झइ' पद से भी पुनः

सम्यग्दर्शन प्राप्त होना स्पष्ट होता है।

प्रज्ञापना पद 20 में बोधि शब्द का स्पष्ट अर्थ सम्यग्दर्शन प्राप्त होना होता है। बोधि से– श्रद्धा, प्रतीति, रुचि तथा उससे अज्ञान के स्थान पर मति–श्रुतादि ज्ञान होना अर्थ लिया है।

जिज्ञासा–7 सुखविपाक सूत्र में पाँच प्रकार के दिव्य कौन–कौनसे बतलाये गये हैं?

समाधान– सुखविपाक सूत्र के प्रथम अध्ययन में पाँच दिव्य इस प्रकार बतलाये हैं– "इमाइं पंच दिव्वाइं पाउभूयाइं–तं जहा– 1.वसुहारा वुट्ठा, 2. दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए, 3.चेलुक्खेवे कए, 4.आहयाओ देवदुंदुहिओ, 5. अंतरा वि य णं आगासं वि अहोदाणं अहोदाणं घुट्टेय।"

अर्थात्– 1. आकाश से देवों ने सुवर्ण (सौनेया) वृष्टि की, 2. पाँच वर्ण वाले अचित्त पुष्पों की वृष्टि की, 3. दिव्य वस्त्रों की वृष्टि की, 4. देव दुन्दुभि बजी, 5. आकाश में अहोदान–अहोदान की घोषणा हुई।

जिज्ञासा–8 सुबाहुकुमार के द्वारा किए गए पौषध की क्या विधि बतलायी है?

समाधान– सुबाहुकुमार ने प्रतिमाह अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा इन छः दिनों में प्रतिपूर्ण पौषध व्रत की आराधना की।

पौषध करने से पहले पौषधशाला का स्वयं ने अपने हाथों से प्रमार्जन किया। उच्चार–पासवण भूमि को देखा। दर्भ का संथारा–बिछौना तैयार किया तथा उसी बिछौने पर बैठकर अष्टम तप (तेला) के साथ प्रतिपूर्ण पौषध व्रत स्वीकार किया।

अभिधान राजेन्द्र कोष भाग–5, पेज संख्या–1133 पर पौषध के लिये कहा कि–

पोषं–पुष्टिं, प्रक्रमाद् धर्मस्य धत्ते करोतीति पौषधः।
पोसहोववासे चउव्विहे पण्णत्ते तं जहा- आहार पोसहे,
सरीर पोसहे, बंभचेर पोसहे, अव्वावार पोसहे।

अर्थात् जो धर्म–भावना, आत्म–गुणों को पुष्ट करे, वह पौषध है। पौषध चार प्रकार का होता है–

1. आहार पौषध : चारों आहार का त्याग
2. शरीर पौषध : शोभा, विभूषा का त्याग
3. ब्रह्मचर्य पौषध : कुशील–सेवन का त्याग
4. अव्यापार पौषध : सांसारिक–व्यापार का त्याग

सुबाहुकुमार ने उक्त चारों प्रकार के पौषध व्रत की सम्यक् आराधना की।

जिज्ञासा–9 सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ इन शब्दों के क्या अर्थ हैं?

समाधान–

1. सिज्झिहिइ : सम्पूर्ण कार्यों को करके सिद्ध होगा।
2. बुज्झिहिइ : विमल केवल ज्ञान रूपी आलोक से सकल लोक और अलोक का ज्ञाता होगा।
3. मुच्चिहिइ : सकल कर्मों से मुक्त होगा।

4. परिणिव्वाहिइ : समस्त कर्मकृत विकारों से रहित होने के कारण शीतलीभूत होगा।

5. सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ : समस्त दुःखों का अन्त करेगा।

तत्त्वार्थ सूत्र

जैन तत्त्वज्ञान के विशिष्ट संग्राहक ग्रन्थ के रूप में तत्त्वार्थ सूत्र को जाना जाता है। जैसे कोई दक्ष कलाकार मोतियों को क्रमशः सजाकर एक सुन्दर हार का रूप दे देता है। वैसी ही संग्रह की दक्षता का दर्शन तत्त्वार्थ सूत्र में ही होता है। यह ग्रन्थ श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में मान्य है। इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में सम्यग् दर्शन–ज्ञान का वर्णन किया गया, दूसरे से चौथे अध्याय में जीव तत्त्व का वर्णन किया गया है, उसमें भी तीसरे अध्याय में नारक जीवों के तथा चतुर्थ अध्याय में देवगति के जीवों का वर्णन करने के साथ दोनों अध्ययनों में तीनों लोकों के स्वरूप का भी वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय

सूत्र— रत्न-शर्करा-बालुका-पंक-धूम-तमो-महातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठाः सप्ताधोधः पृथुतराः ॥1॥

अर्थ— रत्न प्रभा, शर्करा प्रभा, बालुका प्रभा, पंक प्रभा, धूम प्रभा, तमः प्रभा और महातमः प्रभा नामक ये सात पृथ्वियाँ हैं। ये सातों पृथ्वियाँ घनोदधि, घनवात, तनुवात और आकाश पर स्थित हैं। क्रमशः एक–दूसरी के नीचे हैं तथा क्रमशः एक–दूसरी से अधिक विस्तार वाली हैं।

सूत्र— तासु नरकाः ॥2॥

अर्थ— उन पृथ्वियों में नारक जीव हैं।

प्रश्न— नरक पृथ्वियाँ कितनी हैं?

उत्तर— नरक पृथ्वियाँ सात हैं— 1.रत्न प्रभा, 2.शर्करा प्रभा, 3.बालुका प्रभा, 4.पंक प्रभा, 5.धूम प्रभा, 6. तमः प्रभा और 7.महातमः प्रभा। वस्तुतः ये इन सात पृथ्वियों के गोत्र हैं जो कि वहाँ के प्रभाव, वातावरण को दर्शाते हैं। इन पृथ्वियों के मूल नाम क्रमशः घम्मा, वंसा, शिला, अंजना, रिष्ठा, मघा और माघवती है।

प्रश्न— ये नरक भूमियाँ आकाश में किस प्रकार टिकी हुई हैं?

उत्तर— ये नरक भूमियाँ घनोदधि के आधार पर टिकी हुई हैं। घनोदधि जमे हुए घी के समान ठोस जल है। घनोदधि घनवात पर स्थित है जो कि ठोस वायु रूप है। घनवात तनुवात पर टिका है जो कि पिघले हुए घी के समान है। तनुवात आकाश पर प्रतिष्ठित है तथा आकाश स्वयं का आधार स्वयं ही है।

सूत्र— नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥3॥

अर्थ— उन नारकी जीव की लेश्या, परिणाम, देह, वेदना और विक्रिया निरन्तर अशुभतर होती हैं।

सूत्र— परस्परोदीरित दुःखाः ॥4॥

अर्थ— वे परस्पर एक दूसरे को दुःख देते हैं।

सूत्र— संक्लिष्टासुरोदीरित दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥5॥

अर्थ— चौथी नरक भूमि से पहले यानी तीसरी नरक भूमि तक संक्लिष्ट असुर भी उन्हें पीड़ित करते हैं।

सूत्र— तेष्वेकत्रिसप्तदश सप्तदशद्वाविंशति त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाः सत्त्वानां परा स्थितिः ॥6॥

अर्थ— उन नरकों में जीवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सतरह, बाईस तथा तैतीस सागरोपम की है।

प्रश्न— नारकियों में किस प्रकार अशुभता का प्रभाव रहता है?

उत्तर— नारकियों में लेश्या, परिणाम, देह, वेदना और विक्रिया भी अशुभ से अशुभ होती है।

1. **लेश्या—** रत्न प्रभा, शर्करा प्रभा में कापोत लेश्या है, परन्तु दूसरी शर्करा प्रभा नरक में तीव्र संक्लेश से युक्त है। बालुका प्रभा में कापोल–नील, पंक प्रभा में नील, धूम प्रभा में नील–कृष्ण, तमः प्रभा में कृष्ण और महातमः प्रभा में भी कृष्ण लेश्या है। लेकिन अन्तर इतना है कि क्रमशः इनमें तीव्रतम संक्लेश बढ़ता जाता है।

2–3. **परिणाम, देह—** अशुभ नाम कर्म के उदय के कारण नारकियों के उत्तरोत्तर अशुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि के शरीर होते हैं तथा पौद्गलिक परिणाम भी निरन्तर अशुभ होते हैं।

4. **वेदना—** सातों नरक में वेदना उत्तरोत्तर तीव्र होती जाती है। प्रथम तीन नरक में उष्ण, चौथी में उष्ण–शीत, पाँचवीं में शीतोष्ण, छठी में शीत और सातवीं में अत्यन्त शीत वेदना है।

5. **विक्रिया—** उनकी विक्रिया भी अशुभतर होती जाती है। वे वैक्रिय लब्धि से शुभ बनाने की कोशिश करते हैं लेकिन अशुभ ही बनता है।

प्रश्न— लेश्या आदि भावों को नित्य क्यों कहा गया है?

उत्तर— नित्य अर्थात् निरन्तरता। अशुभ नाम कर्म के उदय के कारण नारकों में लेश्या आदि भाव आजीवन अशुभ ही रहते हैं, इस कारण इनको नित्य कहा है।

प्रश्न— नरक में पायी जाने वाली वेदनाओं को लिखिए।

उत्तर— नरक में नारकियों को तीन प्रकार की वेदना भोगनी पड़ती है। ये तीनों वेदनाएँ स्वयं के पूर्वजन्मों के कर्मानुसार हैं—

1. क्षेत्र कृत वेदना— इस वेदना का कारण वहाँ की वेदनाजन्य नरक भूमि है। नरक की भूमि का स्पर्श छुरे की धार जैसा है, अत्यन्त दुर्गन्ध है, भय ही भय का वातावरण है।
2. परस्पर कृत— आपस में वैरभाव के कारण नारकी एक दूसरे के साथ मार–पीट करके लड़ते रहते हैं। एक–दूसरे को ज्यादा से ज्यादा कष्ट–पीड़ा देते ही रहते हैं।
3. देव कृत— भवनपति जाति के 15 परमाधार्मिक देव— 1.अम्ब, 2.अम्बरीष, 3.श्याम, 4.सबल, 5.रुद्र, 6.महारुद्र, 7.काल, 8.महाकाल, 9.असिपत्र, 10.धनुष्य, 11.कुम्भ, 12.बालुका, 13.वैतरणी, 14.खरस्वर और 15.महाघोष, ये संक्लिष्ट परिणामी होते हैं। ये तीसरी नरक भूमि के नारकियों को निरन्तर दुःख, कष्ट और वेदना से त्रस्त करते हैं। ये वेदना अधर्मजन्य वेदना भी कही जातीहै।

प्रश्न— सात नरक भूमियों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी–कितनी हैं?

उत्तर— प्रथम रत्न प्रभा पृथ्वी की 1 सागरोपम, दूसरी शर्करा प्रभा पृथ्वी की 3 सागरोपम, तीसरी बालुका प्रभा पृथ्वी की 7 सागरोपम, चौथी पंक प्रभा की 10 सागरोपम, धूमप्रभा नामक पाँचवीं पृथ्वी की 17 सागर, छठी तमः प्रभा की 22 सागरोपम तथा सातवीं महातमः प्रभा की 33 सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है। नारकियों को इस प्रकार असंख्यात काल की आयु तक कष्ट भोगना पड़ता है। वे अनपवर्तनीय आयु होने के कारण बीच में अकाल मौत का भी वरण नहीं करते हैं।

प्रश्न— किस–किस नरक में कितने–कितने नरकावास हैं?

उत्तर— पहली नारकी में 30 लाख नरकावास
दूसरी नारकी में 25 लाख नरकावास
तीसरी नारकी में 15 लाख नरकावास
चौथी नारकी में 10 लाख नरकावास
पाँचवीं नारकी में 3 लाख नरकावास
छठी नारकी में 5 कम 1 लाख नरकावास
सातवीं नारकी में 5 नरकावास
इस प्रकार कुल 84 लाख नरकावास हैं।

प्रश्न— किस–किस नरक में कितने–कितने पाथड़े–आन्तरे हैं?

उत्तर— 'पाथड़े' का अर्थ पृथ्वीपिण्ड है। 'आन्तरे' का अर्थ अवकाश अथवा रिक्त स्थान हैं।

उत्तर— पहली नारकी में	13 पाथड़े	12 आन्तरे
दूसरी नारकी में	11 पाथड़े	10 आन्तरे
तीसरी नारकी में	9 पाथड़े	8 आन्तरे
चौथी नारकी में	7 पाथड़े	6 आन्तरे
पाँचवीं नारकी में	5 पाथड़े	4 आन्तरे
छठी नारकी में	3 पाथड़े	2 आन्तरे
सातवीं नारकी में	1 पाथड़े	नहीं

इस प्रकार कुल 49 पाथड़े एवं 42 आन्तरे हैं।

सूत्र— जम्बूद्वीप लवणादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥7॥

अर्थ— जम्बूद्वीप तथा लवणोदधि आदि शुभ नाम वाले असंख्यात द्वीप समुद्र मध्यलोक में हैं।

सूत्र— द्विर्द्विर्विष्कम्भा पूर्व पूर्व परिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥8॥

अर्थ— वे सब द्वीप और समुद्र वलय (कंगन जैसी गोल आकृति वाले) पूर्व–पूर्व को वेष्टित करने वाले और दूने–दूने विष्कम्भ (व्यास) अर्थात् विस्तार वाले हैं।

सूत्र— तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥9॥

अर्थ— उन सबके बीच में जम्बूद्वीप है जो वृत्त (कुम्हार के चाक) के समान गोल है, लाख योजन विष्कम्भ वाला है और जिसके मध्य में मेरुपर्वत है।

सूत्र— तत्र भरतहैमवतहरिविदेहरम्यक् हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥10॥

अर्थ— जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यक्वर्ष, हैरण्यवतवर्ष, ऐरावतवर्ष – ये सात क्षेत्र हैं।

सूत्र— तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नीलरुक्मि- शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥11॥

अर्थ— उन क्षेत्रों को पृथक् करने वाले और पूर्व–पश्चिम लम्बे हिमवान, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी – ये छह वर्षधर पर्वत हैं।

सूत्र— द्विर्धातकीखण्डे ॥12॥

अर्थ— धातकी खण्ड नामक दूसरे द्वीप में भरत आदि क्षेत्र और हिमवान आदि पर्वत दो–दो हैं।

सूत्र— पुष्करार्धे च ॥13॥

अर्थ— पुष्कर द्वीप के आधे भाग में धातकी खण्ड के समान भरत आदि क्षेत्र और हिमवान् आदि पर्वत जम्बूद्वीप से दुगुने हैं।

सूत्र— प्राङ् मानुषोत्तरान् मनुष्याः ॥14॥

अर्थ— मानुषोत्तर पर्वत के पहले–पहले ही अढ़ाई द्वीप मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

सूत्र— आर्या म्लेच्छाश्च ॥15॥

अर्थ— ये मनुष्य आर्य और म्लेच्छ के भेद से दो प्रकार के हैं।

सूत्र— भरतैरावत विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तर कुरुभ्यः ॥16॥

अर्थ— देव कुरु, उत्तर कुरु क्षेत्रों को छोड़कर पाँच भरत, पाँच ऐरवत और पाँच महाविदेह, इस प्रकार 15 कर्मभूमियाँ हैं।

सूत्र— नृस्थिति परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥17॥

अर्थ— मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की तथा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

सूत्र— तिर्यग्योनीनां च ॥18॥

अर्थ— तिर्यञ्चों की भी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की तथा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है।

प्रश्न— मध्य लोक के स्वरूप को समझाइए।

उत्तर— मध्य लोक में असंख्यात द्वीप–समुद्र हैं। ये सभी द्वीप–समुद्र दुगुने–दुगुने विस्तार वाले हैं। इनकी आकृति चूड़ी के समान गोल है तथा ये अपने से पूर्व के द्वीप अथवा समुद्र को चारों ओर से परिवेष्टित किये हुए हैं। मध्यलोक के मध्य में जम्बूद्वीप है फिर लवण समुद्र है। इसी प्रकार द्वीप और समुद्र के क्रम से मध्य लोक का अन्तिम द्वीप और समुद्र क्रमशः स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र है।

प्रश्न— जम्बूद्वीप की भौगोलिक स्थिति समझाइए।

उत्तर— जम्बूद्वीप, असंख्यात द्वीप–समुद्रों में सबसे छोटा द्वीप है। यह चूड़ी के समान गोल है। इसका व्यास एक लाख योजन है। इसके मध्य में मेरुपर्वत है जो एक लाख योजन ऊँचा है। वह 99000 योजन पृथ्वी के ऊपर और एक हजार योजन पृथ्वी के अन्दर है। इस जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र हैं— 1.भरतवर्ष, 2.हैमवतवर्ष, 3.हरिवर्ष, 4.विदेहवर्ष, 5.रम्यक्वर्ष, 6.हैरण्यवर्ष, 7.ऐरवत वर्ष। इनमें पहला भरत दक्षिण की ओर है। भरत के उत्तर में हैमवत, हैमवत के उत्तर में हरिवर्ष, हरिवर्ष के उत्तर में विदेह,

विदेह के उत्तर में रम्यक्, रम्यक् के उत्तर में हैरण्यवत और हैरयवत के उत्तर में ऐरवत वर्ष है। मेरुपर्वत सातों क्षेत्रों के उत्तरी भाग में अवस्थित है।

प्रश्न— जम्बूद्वीप के सातों क्षेत्रों का विभाजन किस आधार से होता है?

उत्तर— जम्बूद्वीप में सातों क्षेत्रों को विभाजित करने वाले छः पर्वत हैं जो वर्षधर पर्वत कहलाते हैं। भरत और हेमवत क्षेत्र के बीच हिमवान पर्वत है। हैमवत और हरिवर्ष के मध्य महाहिमवान पर्वत है। हरिवर्ष और विदेह का विभाजक पर्वत निषध है। विदेह और रम्यक्वर्ष के मध्य नील पर्वत है। रम्यक् और हैरण्यवत का विभाजक रुक्मि पर्वत है। हैरण्यवत और ऐरावत का विभाजक शिखरी पर्वत है। सातों क्षेत्र जम्बूद्वीप में पूर्वी छोर से पश्चिमी छोर तक विस्तृत लम्बे पट के रूप में एक के बाद एक अवस्थित है। विदेह क्षेत्र इन सबके बीच में है, इसलिए मेरुपर्वत भी उस क्षेत्र के ठीक बीच में अवस्थित है।

प्रश्न— धातकी खण्ड और अर्द्ध पुष्कर का स्वरूप समझाइए।

उत्तर— जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत, क्षेत्र तथा वर्षधर पर्वतों की जितनी संख्या है उससे दुगुनी संख्या धातकी खण्ड और अर्द्धपुष्कर द्वीप में है। यहाँ दो मेरु, चौदह क्षेत्र तथा बारह वर्षधर पर्वत हैं। धातकी खण्ड और अर्द्ध पुष्कर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध ये दो भाग हैं। प्रत्येक विभाग में एक–एक मेरु, सात–सात क्षेत्र और छह–छह वर्षधर पर्वत हैं। ये सभी एक ओर से कालोदधि को तथा दूसरी ओर लवणोदधि को स्पर्श करते हैं।

प्रश्न— मनुष्य क्षेत्र अढ़ाई द्वीप प्रमाण कैसे होता है? समझाइए।

उत्तर— जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड तथा अर्द्धपुष्कर, इन अढ़ाई द्वीपों को अढ़ाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र) के नाम से जाना जाता है। मानुषोत्तर पर्वत पुष्कर द्वीप के ठीक मध्य में है जिससे मनुषोत्तर पर्वत के पहले जो ढ़ाई द्वीप और दो समुद्र हैं उनमें ही मनुष्य की स्थिति है। इस मनुष्य क्षेत्र में पाँच मेरु, तीस वर्षधर पर्वत और पैंतीस क्षेत्र हैं।

प्रश्न— मनुष्य जाति के भेद लिखिए।

उत्तर— मनुष्य जाति के प्रमुख दो भेद हैं— 1.आर्य और 2.म्लेच्छ। आर्य 6 प्रकार के हैं— 1.क्षेत्र आर्य— पन्द्रह कर्मभूमि के आर्य क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले; 2.जाति आर्य— इक्ष्वाकु, विदेह, हरि, ज्ञात, उग्र आदि वंशों में उत्पन्न होने वाले; 3.कुल— कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि के कुलों में उत्पन्न होने वाले; 4.कर्म आर्य— जो यजन–याजन, पठन–पाठन; कृषि आदि द्वारा आजीविका चलाते हैं, 5.शिल्प आर्य— जुलाहा, नाई, कुम्हार आदि अल्प आरम्भी आजीविका वाले; 6.भाषा आर्य— शिष्ट पुरुषों द्वारा मान्य भाषा से वचन व्यवहार करने वाले। म्लेच्छ मनुष्य शक, यवन, कम्बोज, शबर, पुलिन्द आदि आर्यों के विपरीत आचरण वाले होते हैं। अन्तर्द्वीपज (लवण समुद्र की दाढ़ों में रहने वाले) मनुष्य तथा कर्मभूमिज में अनार्य क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले म्लेच्छ हैं।

प्रश्न— कर्मभूमियाँ कितनी हैं और इनकी क्या विशेषताएँ हैं?

उत्तर— कर्मभूमियाँ 15 हैं— 5 भरत, 5 ऐरवत और 5 विदेह। मनुष्य क्षेत्र के 35 क्षेत्रों (7x5=35) में से 15 कर्मभूमियों की विशेषता है कि यहाँ मोक्षमार्ग प्रवर्तमान रहता है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि श्रेष्ठ पुरुषों का जन्म यहाँ होता है। 56 अन्तर्द्वीपज तथा हेमवत आदि में युगलिक धर्म होने के कारण उनको अकर्म भूमियाँ कहते हैं। यद्यपि देवकुरु–उत्तरकुरु ये दो क्षेत्र विदेह में हैं तथापि कर्म भूमियों में इनका समावेश नहीं करना चाहिए।

प्रश्न— मनुष्यों और तिर्यञ्चों की स्थितियाँ कितनी हैं?

उत्तर— मनुष्य की व तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट स्थिति 3 पल्योपम है। इन दोनों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। यहाँ स्थिति का भवस्थिति की अपेक्षा से कथन है। इनमें उत्कृष्ट स्थिति युगलिकों की अपेक्षा से है।

प्रश्न— जीवाभिगम सूत्र के अनुसार असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति कितनी होती है?

उत्तर— असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के पाँचों भेदों की जीवाभिगम सूत्र के अनुसार उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है :–

जलचर की	–	एक करोड़ पूर्व की
स्थलचर की	–	84 हजार वर्ष की
खेचर की	–	72 हजार वर्ष की
उरपरिसर्प की	–	53 हजार वर्ष की
भुजपरिसर्प की	–	42 हजार वर्ष की

चतुर्थ अध्याय

सूत्र— देवाश्चतुर्निकायाः ॥1॥

अर्थ— देवों के चार निकाय हैं।

सूत्र— तृतीयः पीतलेश्याः ॥2॥

अर्थ— तीसरे निकाय अर्थात् ज्योतिष देवों की पीत (तेजो) लेश्या होती है।

प्रश्न— देव किसे कहते हैं?

उत्तर— 'देव' शब्द दिव् धातु से बना है, जो द्युति, गति आदि का सूचक है। देव के व्यावहारिक लक्षण यह है कि जिसका शरीर दिव्य हो अर्थात् सामान्य चर्मचक्षुओं से न दिखाई दे, जिसकी गति (गमनाशक्ति) अति वेग वाली हो, जिसके शरीर में रक्त–माँस आदि धातुएँ न हों, मनचाहे रूप बना सकें, आँखों के पलक न झपकें, पैर जमीन से चार अंगुल ऊँचे रहे, शरीर की छाया न पड़ें।

दूसरे शब्दों में जिसके देवगति नाम कर्म का विपाकोदय हो, जो देवायु को भोगता हो, उसे 'देव' कहते हैं। भगवती सूत्र शतक 12 उद्देशक 9 में इन्हें 'भाव देव' के नाम से बतलाया गया है।

प्रश्न— निकाय किसे कहते हैं? देवों के कितने और कौन–कौनसे निकाय हैं?

उत्तर— निकाय का अर्थ संघ, जाति अथवा समूह है। देवों के चार प्रकार के निकाय (समूह) हैं। 1.भवनपति, 2.वाणव्यंतर, 3.ज्योतिषी और 4.वैमानिक।

प्रश्न— इन चार निकायों के देवों के उत्पत्ति स्थान कहाँ है?

उत्तर— भवनपति का उत्पत्ति स्थान रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर–नीचे के एक–एक हजार योजन के भाग को छोड़कर शेष मध्य भाग है। वाणव्यंतर इस ऊपर के एक हजार योजन के भाग में ऊपर–नीचे के 100–100 योजन छोड़कर बीच के 800 योजन में उत्पन्न होते हैं। ज्योतिषी पृथ्वी से ऊपर 790 योजन से 900 योजन तक है और वैमानिक देव उर्ध्वलोक में विमानों में उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न— ज्योतिषी देवों में कौनसी लेश्या होती है?

उत्तर— ज्योतिषी देवों में पीत लेश्या होती है। पीत लेश्या आगमों में तेजो लेश्या के नाम से प्रसिद्ध है।

सूत्र— दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥3॥

अर्थ— कल्पोपपन्न देवों तक के देवों के दश, आठ, पाँच और बारह उत्तर भेद हैं।

सूत्र— इन्द्रसामानिक त्रायस्त्रिंशपारिषद्यात्मरक्षलोकपालानीक- प्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकशः ॥4॥

अर्थ— चार निकाय के भेदों में इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद्य, आत्मरक्षक, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक – ये देवों की दस पदवियाँ हैं।

सूत्र— त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्का: ॥5॥

अर्थ— व्यंतर तथा ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश तथा लोकपाल नहीं होते हैं।

प्रश्न— कल्पोपपन्न तक के चार निकायों के कितने–कितने भेद हैं?

उत्तर— कल्पोपपन्न देवों के चार निकायों में क्रमशः भवनपति के दश, वाणव्यन्तर के आठ, ज्योतिषी के पाँच और वैमानिक के बारह भेद हैं। वैमानिक में कल्पोपन्न और कल्पातीत दो भेद होते हैं। उनमें से ये 12 भेद कल्पोपन्न के हैं।

प्रश्न— देवों में कितनी व कौन–कौनसी श्रेणियाँ (पदवियाँ) होती हैं?

उत्तर— देवों की श्रेणियों को दस भागों में विभक्त किया गया हैं :–

1. इन्द्र— सभी प्रकार के देवों के स्वामी।
2. सामानिक— आयु आदि में इन्द्र के समान अर्थात् अमात्य, पिता, गुरु आदि की तरह पूज्य।
3. त्रायस्त्रिंश— मन्त्री या पुरोहित का कार्य करने वाले।
4. पारिषद्य— मित्र का काम करने वाले।
5. आत्मरक्षक— अंगरक्षक, शस्त्र लिए इन्द्र के सिंहासन के पीछे खड़े रहने वाले।
6. लोकपाल— सीमा की रक्षा करने वाले।
7. अनीक— सैनिक और सेनापति आदि।
8. प्रकीर्णक— सामान्य देव अथवा नगरवासियों के समान देव।
9. आभियोग्य— सेवक और दास श्रेणि के देव।
10. किल्विषिक— ऐसे देव जिन्हें चाण्डाल आदि के समान हीन माना जाता है।

प्रश्न— व्यंतर और ज्योतिषी में देवों की कितनी श्रेणियाँ होती हैं?

उत्तर— व्यंतर और ज्योतिषी में देवों की आठ श्रेणियाँ होती है। उक्त दस में से लोकपाल (सीमा रक्षक) और त्रायस्त्रिंश (मंत्री या पुरोहित का कार्य करने वाले) देवों की श्रेणियाँ नहीं होती हैं।

सूत्र— पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥6॥

अर्थ— प्रथम दो देव निकायों में दो–दो इन्द्र हैं।

सूत्र— पीतान्तलेश्याः ॥7॥

अर्थ— प्रथम दो देव निकायों में पीत (तेजो) लेश्या पर्यंत चार लेश्या होती हैं।

प्रश्न— भवनपति, वाणव्यन्तर देवों (प्रथम दो निकाय) में कितने–कितने इन्द्र होते हैं? उनके नाम भी लिखिए।

उत्तर— भवनपति, वाणव्यन्तर देवों में उत्तर दिशा व दक्षिण दिशा के अनुसार दोनों दिशाओं के दो–दो इन्द्र होते हैं। दस भवनपति के 20 इन्द्र होते हैं। उनके नाम निम्न हैं :–

1. असुर कुमारों के दो इन्द्र–चमर और बलि।
2. नाग कुमारों के दो इन्द्र–धरण और भूतानन्द।
3. सुपर्ण कुमारों के दो इन्द्र–वेणुदेव और वेणुदाली।
4. विद्युत कुमारों के दो इन्द्र–हरि और हरिसह।
5. अग्नि कुमारों के दो इन्द्र–अग्निशिख और अग्निमाणव।

6. द्वीप कुमारों के दो इन्द्र–पूर्ण और वशिष्ट।

7. उदधि कुमारों के दो इन्द्र–जलकान्त और जलप्रभ।

8. दिक् कुमारों के दो इन्द्र–अमित गति और अमित वाहन।

9. वायु कुमारों के दो इन्द्र–वेलम्ब और प्रभंजन।

10.स्तनित कुमारों के दो इन्द्र–घोष और महाघोष।

वाणव्यन्तर के 8 भेदों के 16 इन्द्र होते हैं– 1.पिशाचों के काल व महाकाल, 2. भूतो के सुरूप और प्रतिरूप, 3.यक्षों के पूर्णभद्र और मणिभद्र, 4.राक्षसों के भीम व महाभीम, 5.किन्नरों के किंन्नर और किंपुरुष, 6.किंपुरुषों के सत्पुरुष व महापुरुष, 7.महोरगों के अतिकाय व महाकाय, 8.गंधर्वों के गीतरति और गीतयश।

ये भवनपति के 20, व्यन्तरों के 16 इन्द्र होते हैं।

प्रश्न— ज्योतिषी और वैमानिक देवों में कितने–कितने इन्द्र होते हैं?

उत्तर— ज्योतिषी में चन्द्र और सूर्य असंख्यात हैं इसलिए इनके इन्द्र भी इतने ही हैं। अतः इन दो को संज्ञा रूप में दो इन्द्र माना है। वैमानिक में प्रत्येक कल्प में 8 कल्प तक अपने नाम वाला एक इन्द्र है। नवाँ–दसवाँ कल्प में प्राणत नामक एक ही इन्द्र है और ग्यारहवाँ–बारहवाँ कल्प में अच्युत नाम का एक ही इन्द्र है। इस प्रकार 12 कल्पों के 10 इन्द्र हैं।

प्रश्न— चौसठ इन्द्र किस प्रकार होते हैं?

उत्तर— देवों की चारों निकायों के कुल 64 इन्द्र होते हैं। भवनपति के दक्षिण दिशा के 10, उत्तर दिशा के 10, ये कुल 20 इन्द्र हैं। व्यन्तर निकाय के उत्तर दिशा के 16 और दक्षिण दिशा के 16, ये 32 व्यन्तरों के इन्द्र हैं। ज्योतिषी के चन्द्र व सूर्य नामक दो इन्द्र हैं। वैमानिक के 10 इन्द्र हैं इस प्रकार 20+32+2+10 = 64 इन्द्र हैं।

प्रश्न— प्रथम दो निकाय में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर— कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल नामक छः लेश्याओं में से प्रथम चार लेश्या इन प्रथम दो निकायों के देवों में पायी जाती हैं। ये द्रव्य लेश्या की अपेक्षा कथन है न कि भाव लेश्या की अपेक्षा, क्योंकि भाव लेश्या तो इनमें छः ही होती हैं।

सूत्र— काय प्रवीचारा आ ऐशानात्॥8॥

अर्थ— ऐशान कल्प तक के देव, मनुष्यों के समान शरीर से विषय सुख भोगने वाले होते हैं।

सूत्र— शेषाः स्पर्शरूप शब्दमनःप्रवीचारा द्वयोर्द्वयोः॥9॥

अर्थ— शेष दो–दो कल्प के देव क्रमशः स्पर्श, रूप, शब्द और मन द्वारा विषय सुख भोगते हैं।

सूत्र— परेऽप्रवीचाराः॥10॥

अर्थ— शेष ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देव विषय–सेवन से रहित हैं।

प्रश्न— प्रथम तीन निकाय के देव विषय सुख का सेवन किस प्रकार करते हैं?

उत्तर— प्रथम तीन निकाय के देव मनुष्य की भाँति शरीर के द्वारा विषय सुख (काम–सुख) सेवन करने वाले होते हैं। इनमें मनुष्य की तरह कामेच्छा होती है और ये शरीर के द्वारा विषय सुख सेवन कर प्रसन्न होते हैं।

प्रश्न— 12 देवलोकों के देव किस प्रकार का विषय सुख सेवन करते हैं?

उत्तर— पहला दूसरा देवलोक के देव तो उक्त प्रथम तीन निकाय के देवों की तरह शरीर से विषय सुख भोगते हैं। तीसरे–चौथे कल्प के देव मात्र देवियों के स्पर्श से काम सुख का अनुभव करते हैं। पाँचवें–छठे कल्प के देव–देवियों के श्रृंगार सम्पन्न रूप को देखकर अपनी भोग की तृप्ति करते हैं। सातवें–आठवें कल्प के देवों की काम वासना देवियों के विविध कामुक शब्दों को सुनकर तृप्त हो जाती है। नवें से बारहवें तक के कल्पों के देवों की तृप्ति देवियों का मन से चिन्तन करने मात्र से हो जाती है।

प्रश्न— नव ग्रैवेयक तथा पाँच अनुत्तर के देवों में किस प्रकार विषय सुख सेवन करते हैं?

उत्तर— ये देव शान्त और विषयसुख सेवन से उपरत रहते हैं। उन्हें देवियों के स्पर्श आदि से कामसुख भोगने की इच्छा ही नहीं होती हैं। वे नीचे के देवों से अधिक सन्तुष्ट व सुखी होते हैं।

प्रश्न— विषय सुख सेवन में देवों को अलग–अलग प्रकार से क्यों तृप्ति होती है? समझाइए।

उत्तर— चित्त का संक्लेश ही कामवासना का कारण है और जैसे–जैसे चित्त का संक्लेश कम होता जाता है विषय सुख की तीव्रता भी मन्द होती जाती है और ऊपर के देवों में काम–सुख के साधन भी कम होते हैं। बारहवें देवलोक से ऊपर के देवों में काम–वासना शान्त होती है। वे सन्तोष जन्य सुख में निमग्न रहते हैं।

सूत्र— भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधि द्वीप दिक्कुमाराः ॥11॥

अर्थ— भवनवासी देव दस प्रकार के हैं— 1.असुर कुमार, 2.नाग कुमार, 3.विद्युत् कुमार, 4.सुपर्ण कुमार, 5.अग्नि कुमार, 6.वायु कुमार, 7.स्तनित कुमार, 8.उदधि कुमार, 9.द्वीप कुमार और 10.दिशा कुमार।

सूत्र— व्यन्तराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगान्धर्वयक्षराक्षसभूत- पिशाचाः ॥12॥

अर्थ— आठ प्रकार के व्यन्तर देव हैं— 1.किन्नर, 2.किंपुरुष, 3.महोरग, 4.गन्धर्व, 5.यक्ष, 6. राक्षस, 7.भूत और 8.पिशाच।

सूत्र— ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसौग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च ॥13॥

अर्थ— ज्योतिष्क देव के पाँच भेद हैं— 1.सूर्य, 2.चन्द्र, 3.ग्रह, 4.नक्षत्र और 5. प्रकीर्ण अर्थात् तारे।

सूत्र— मेरू प्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥14॥

अर्थ— ये सब ज्योतिष्क देव मनुष्यलोक में मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए निरन्तर गमन करने वाले हैं।

सूत्र— तत्कृतः कालविभागः ॥15॥

अर्थ— घड़ी, पल आदि काल का विभाग इन्हीं चर ज्योतिष्कों द्वारा होता है।

सूत्र— बहिरवस्थिताः ॥16॥

अर्थ— मनुष्य लोक से बाहर सब ज्योतिष्क अवस्थित (स्थिर) है।

सूत्र— वैमानिकाः ॥17॥

अर्थ— विमानों में रहने वाले वैमानिक देव कहलाते हैं।

सूत्र— कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥18॥

अर्थ— वैमानिक देव कल्पोपपन्न और कल्पातीत के भेद से दो प्रकार के हैं।

सूत्र— उपर्युपरि ॥19॥

अर्थ— वे एक–दूसरे के ऊपर स्थित हैं।

सूत्र— सौधर्मैशान सानत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म लोक लान्तक महाशुक्र सहस्त्रारेष्वानत प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेकेषु विजय वैजयन्त जयन्ताऽपराजितेषु सर्वार्थ सिद्धै च ॥20॥

अर्थ— सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन 12 कल्पों में तथा 9 ग्रैवेयकों में और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थ सिद्ध में वैमानिक देवों का निवास है।

प्रश्न— भवनपति देवों के निवास स्थान बतलाइए।

उत्तर— 10 प्रकार के भवनपति देवों का निवास स्थान जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के नीचे उत्तर–दक्षिण भाग में तिरछी दिशा में अनेक कोडाकोडी लाख योजन तक का क्षेत्र है। असुर कुमार जाति के देव अधिकतर अपने आवासों में रहते हैं कभी भवनों में भी रहते हैं। शेष नौ प्रकार के देव प्रायः भवनों में ही बसते हैं।

प्रश्न— भवन और आवास में क्या अन्तर है?

उत्तर— नाना प्रकार के रत्नों की प्रभा से उद्दीप्त रहने वाले शरीर प्रमाण के अनुसार बने हुए महामण्डप आवास कहलाते हैं। बाहर से गोल, भीतर से चौकोर और नीचे के भाग में कमल कर्णिका के जैसे बने हुए मकानों को भवन कहते हैं। आवास बड़े मण्डप जैसे होते हैं और भवन नगर के समान होते हैं।

प्रश्न— भवनपति देवों के चिह्न आदि क्या विशेषताएँ हैं?

उत्तर— दस भवनपतियों में असुरकुमार के मुकुट में चूड़ामणि का, नागकुमार के नाग का, विद्युत्कुमार के वज्र का, सुपर्णकुमार के गरुड़ का, अग्निकुमार के घट का, वायुकुमार के अश्व का, स्तनितकुमार के वर्धमान सकोरा संपुट का, उदधिकुमार के मकर का, द्वीपकुमार के सिंह का और दिशाकुमार के हस्ति का चिह्न होता है। सभी के वस्त्र, शस्त्र, आभूषण आदि विविध होते हैं।

प्रश्न— व्यन्तर देवों की विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर— सभी व्यन्तर देव उर्ध्व, मध्य और नीचे के तीनों लोकों में भवनों तथा आवासों में बसते हैं। ये भिन्न–भिन्न स्थानों पर जाते रहते हैं। विविध पहाड़ों और गुफाओं के तथा वनों के अन्तरों में बसने के कारण इन्हें व्यन्तर कहा जाता है। आठों प्रकार के चिह्न क्रमशः अशोक, चम्पक, नाग, तुम्बरु, वट, खटवाङ्ग, सुलस और कदम्बक हैं। खटवाङ्ग के अलावा शेष चिह्न वृक्ष जाति के हैं। ये चिह्न इनके आभूषण आदि में होते हैं।

प्रश्न— ज्योतिष्क देव कितने हैं और वे कहाँ अवस्थित रहते हैं?

उत्तर— सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्ण तारे, ये ज्योतिष्क के पाँच भेद हैं। सूर्य मेरुपर्वत के समतल भू–भाग से 800 योजन की ऊँचाई पर है। यहाँ से 80 योजन ऊँचाई पर चन्द्र के विमान हैं। यहाँ से 20 योजन की ऊँचाई पर ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्ण तारों के विमान अवस्थित हैं।

प्रश्न— ज्योतिष्कों के द्वारा काल का विभाग किस प्रकार होता है?

उत्तर— मनुष्य लोक में अवस्थित ज्योतिष्क सदा मेरु पर्वत के चारों ओर भ्रमण करते रहते हैं। इनसे ही मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास आदि एवं भूत, भविष्य का काल व्यवहार मनुष्य लोक में होता है। इस काल विभाग का मुख्य आधार चन्द्र, सूर्य आदि की गति ही है।

प्रश्न— मनुष्य लोक के बाहर काल व्यवहार क्यों नहीं होता है?

उत्तर— मनुष्य लोक के बाहर सूर्य आदि ज्योतिष्क के विमान स्थिर हैं क्योंकि उनके विमान स्वभाव से ही एक स्थान पर स्थिर रहते हैं। अतः उनकी लेश्या और प्रकाश भी एक रूप में स्थिर रहता है।

प्रश्न— चतुर्थ निकाय के देवों को क्या कहते हैं, इसके कितने भेद हैं?

उत्तर— चतुर्थ निकाय के देव विमानों में रहने के कारण वैमानिक कहलाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं— 1.कल्पोपपन्न, 2.कल्पातीत। कल्पोपपन्न में सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्त्रार, आणत, प्राणत, आरण और अच्युत ये 12 देवलोक हैं। जहाँ इन्द्र, मंत्री, सेनापति आदि की व्यवस्था है, वे कल्पोपपन्न देव हैं। कल्पातीत विमान 14 हैं— 9 ग्रैवेयक और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध अनुत्तर विमान। कल्पातीत देव इन्द्र के समान होते हैं अतः वे अहमिन्द्र होते हैं। कल्पातीत देव अपना स्थान छोड़कर कहीं नहीं जाते हैं।

प्रश्न— वैमानिक देवों के विमान किस प्रकार स्थित हैं?

उत्तर— जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से असंख्यात योजन ऊपर मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में पहला सौधर्म और इसी की समश्रेणी में ईशान कल्प है। इनसे असंख्यात योजन ऊपर तीसरा–चौथा कल्प समश्रेणी में हैं। इनसे असंख्यात–असंख्यात योजन क्रमशः पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ देवलोक क्रमशः ऊपर–ऊपर हैं। इनसे असंख्यात योजन ऊपर नवाँ, दसवाँ तथा ग्यारहवाँ, बारहवाँ समश्रेणी से क्रमशः अवस्थित हैं इनसे असंख्यात योजन ऊपर क्रमशः नवगैवेयक की पहली त्रिक, दूसरी त्रिक, तथा तीसरी त्रिक है। नवग्रैवेयक की अन्तिम त्रिक से असंख्यात योजन ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं। सर्वार्थ सिद्ध विमान से 12 योजन ऊपर सिद्ध शिला है। इस प्रकार वैमानिक देवों के विमान एक के ऊपर एक अवस्थित हैं।

सूत्र— स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि- विषयतोऽधिका॥21॥

अर्थ— आयु, प्रभाव, सुख, कान्ति, लेश्या की विशुद्धि, इन्द्रिय और अवधिज्ञान का विषय, ये सब ऊपर–ऊपर के देवों में अधिक हैं।

सूत्र— गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः॥22॥

अर्थ— किन्तु गति, शरीर का परिमाण, परिग्रह और अभिमान, इन विषयों में ऊपर–ऊपर के देव हीन हैं।

प्रश्न— ऊपर–ऊपर के देवों में क्रमशः कौनसी बातें बढ़ती जाती हैं?

उत्तर— स्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या, विशुद्धि, इन्द्रिय विषय और अवधिज्ञान का विषय ऊपर के देवों में क्रमशः वृद्धिंगत होता है।

1. स्थिति— यह क्रमशः ऊपर के देवलोकों में बढ़ती जाती है और सर्वार्थसिद्ध की उत्कृष्ट 33 सागरोपम होती है।
2. प्रभाव— लब्धि, ऋद्धि, अनुग्रह आदि का साम्यर्थ्य प्रभाव के अन्तर्गत है यह उत्तरोत्तर देवों में अधिक है। किन्तु ऊपर के देवों में क्रमशः विशुद्धि बढ़ती जाती है इससे वे इसका उपयोग नहीं करते हैं।
3. सुख— इन्द्रियों द्वारा अनुभव सुख भी क्रमशः बढ़ता है।
4. द्युति— शरीर, वस्त्र, आभूषण आदि की कांति (दीप्ति) यह भी ऊपर के देवों में उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है।
5. लेश्या विशुद्धि— उत्तरोत्तर देवों की लेश्या क्रमशः विशुद्ध होती है। ऊपर के देवों के परिणाम कम संक्लिष्ट होने से उनकी लेश्या अपेक्षाकृत अधिक विशुद्ध होती है।
6. इन्द्रिय विषय— विषय सेवन को ग्रहण करने का इन्द्रिय का सामर्थ्य भी उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होता है। संक्लेश की कमी के कारण ऊपर के देवों में क्रमशः अधिक होता है।
7. अवधिज्ञान का विषय— नीचे के देवों से ऊपर के देवों का अवधिज्ञान क्रमशः अधिक होता जाता है और बढ़ता–बढ़ता सर्वार्थ सिद्ध विमान के अवधिज्ञान से सम्पूर्ण त्रस त्रसनाल को जान व देख सकते हैं।

प्रश्न— कौनसी बातें नीचे से ऊपर के देवों में हीन होती जाती हैं?

उत्तर— निम्न चार बातें उत्तरोत्तर कम होती जाती हैं—

1. गति— गमन की क्रिया ऊपर–ऊपर के देवों में कम होती है। क्योंकि उनमें विषय–भोगों की उदासीनता उत्तरोत्तर अधिक होने से देशान्तर विषयक क्रीड़ा करने की इच्छा कम होती जाती है।
2. शरीर— पहले–दूसरे कल्पों के देवों का शरीर 7 हाथ का, तीसरे–चौथे का 6 हाथ का, पाँचवें–छठे का 5 हाथ का, सातवें–आठवें का 4 हाथ का, नवें से बारहवें तक का 3 हाथ का, नवग्रैवेयक का 2 हाथ का और अनुत्तर विमानवासी देवों का शरीर केवल 1 हाथ का ही होता है।
3. परिग्रह— ऊपर के कल्पों में परिग्रह उत्तरोत्तर कम होता जाता है। उत्तरोत्तर विमान भी कम होते हैं तो देवों का परिवार, आसक्ति आदि भी कम होती जाती है।
4. अभिमान— ऊपर के देवों में द्युति, शक्ति आदि अधिक हैं किन्तु अपनी द्युति आदि का अहंकार कम होता चला जाता है। क्योंकि कषाय की मन्दता बढ़ती जाती है।

सूत्र— पीत पद्म शुक्ल लेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥23॥

अर्थ— सौधर्म और ईशान कल्प में तेजो लेश्या, सानत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक में पद्मलेश्या और लान्तक से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक शुक्ल लेश्या होती है।

प्रश्न— वैमानिक देवों में पायी जाने वाली लेश्याएँ बताइए।

उत्तर— पहले–दूसरे देवलोक में तेजो लेश्या पायी जाती है। तीसरे से पाँचवें देवलोक में पद्मलेश्या तथा छठे से बारहवें देवलोक, नवग्रैवेयक तथा पाँच अनुत्तर विमान में शुक्ल लेश्या पायी जाती है।

सूत्र— प्रागग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥24॥

अर्थ— ग्रैवेयकों के पहले तक कल्प हैं।

प्रश्न— कल्प किसे कहते हैं, और ये कितने हैं?

उत्तर— जिनमें इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि रूप में देवों के विभाग की कल्पना है, वे कल्प कहलाते हैं। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म देवलोक से अच्युत देवलोक तक कल्प का व्यवहार होता है। ये सभी कल्पोपपन्नक देव कहलाते हैं। ग्रैवेयक से लेकर ऊपर के सभी देवलोक कल्पातीत हैं।

सूत्र— ब्रह्मलोकालया लोकान्तिकाः ॥25॥

अर्थ— ब्रह्मलोक लोकान्तिक देवों का निवास स्थान है।

सूत्र— सारस्वतादित्यवह्नयरूणगर्दतोय तुषिताव्याबाध मरुतोऽरिष्टाश्च ॥26॥

अर्थ— सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, मरुत और अरिष्ट ये नौ प्रकार के लोकान्तिक देव हैं।

प्रश्न— लोकान्तिक देव कहाँ रहते हैं और इनकी क्या विशेषताएँ हैं?

उत्तर— लोकान्तिक देव ब्रह्मलोक नामक पाँचवें देवलोक के ही चारों ओर दिशाओं–विदिशाओं में रहते हैं। ये नौ प्रकार के हैं— 1.सारस्वत, 2.आदित्य, 3.वह्नि, 4.अरुण, 5.गर्दतोय, 6.तुषित, 7.अव्याबाध, 8.मरुत और 9.अरिष्ट। इनके मुखिया देवों की यह विशेषता है कि इनमें कल्प व्यवहार नहीं है, सभी देव स्वतन्त्र हैं। ये देव, विषय–वासना से उपरत होने के कारण देवर्षि कहलाते हैं। ये देव, मनुष्य जन्म प्राप्त कर उसी भव से मुक्त हो जाते हैं। तीर्थंकर की दीक्षा के समय उपस्थित होकर दीक्षा लेने के लिए निवेदन कर ये अपने जीताचार का पालन करते हैं।

सूत्र— विजयादिषु द्विचरमाः ॥27॥

अर्थ— विजयादिक चार विमानों के देव द्विचरम अर्थात् दो बार मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

प्रश्न— अनुत्तर विमान वाले देवों की क्या विशेषताएँ हैं?

उत्तर— पाँच अनुत्तर विमान में से विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित के देव अधिक से अधिक दो बार मनुष्य जन्म धारण करके मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इसका क्रम है— चार अनुत्तर से च्युत हो मनुष्य जन्म, उसके बाद अनुत्तर विमान में देव, वहाँ से पुनः मनुष्य जन्म और उसी से मोक्ष प्राप्ति होती है। परन्तु सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देव च्युत होने के बाद केवल एक बार मनुष्य जन्म धारण कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। अनुत्तर विमान के अलावा किसी भी देव के लिए ऐसा नियम नहीं है।

सूत्र— औपपातिक मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥28॥

अर्थ— औपपातिक और मनुष्य के अलावा शेष सभी तिर्यञ्च योनि वाले हैं।

प्रश्न— तिर्यञ्च कौन हैं और वे कहाँ रहते हैं?

उत्तर— औपपातिक अर्थात् देव और नारक तथा मनुष्य को छोड़कर शेष सभी संसारी जीव तिर्यञ्च होते हैं। तिर्यञ्च, लोक के सभी भागों में पाये जाते हैं, शेष सभी तीनों गतियों के लोक के विशेष भागों में ही पाये जाते हैं। तिर्यञ्च में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक पाँचों जाति के जीव होते हैं। जिनमें बेइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तो त्रस नाड़ी में ही होते हैं और एकेन्द्रिय पूरे लोक में व्याप्त होते हैं।

सूत्र— स्थितिः ॥29॥

अर्थ— अब स्थिति (आयु) का वर्णन किया जाता है।

सूत्र— भवनेषु दक्षिणार्धाधिपतीनां पल्योपममध्यर्धम्॥30॥

अर्थ— भवनपतियों में दक्षिणार्ध के इन्द्रों की स्थिति डेढ़ पल्योपम है।

सूत्र— शेषाणां पादोने॥3॥

अर्थ— शेष इन्द्रों की स्थिति पौने दो पल्योपम है।

सूत्र— असुरेन्द्रयोः सागरोपममधिकं च॥32॥

अर्थ— असुर कुमार के दक्षिणार्द्धपति इन्द्रों की एक सागरोपम तथा उत्तरार्द्धपति इन्द्रों की एक सागरोपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।

प्रश्न— भवनपति निकाय के देवों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी है?

उत्तर— भवनपति निकाय के असुरकुमारादि 10 भेद हैं— असुर कुमार के दक्षिणार्द्ध के अधिपति चमरेन्द्र की उत्कृष्ट स्थिति 1 सागरोपम तथा उत्तरार्द्ध के अधिपति बलीन्द्र की उत्कृष्ट स्थिति 1 सागरोपम झाझेरी (कुछ अधिक) है। शेष नागकुमार आदि नौ इन्द्रों की दक्षिणार्द्ध के अधिपतियों की उत्कृष्ट स्थिति डेढ़ पल्योपम और उत्तरार्द्ध के अधिपतियों की उत्कृष्ट स्थिति पौने दो पल्योपम है।

सूत्र— सौधर्मादिषु यथाक्रमम्॥33॥

अर्थ— सौधर्मादि देवलोकों में क्रमशः निम्न स्थितियाँ होती हैं।

सूत्र— सागरोपमे॥34॥

अर्थ— सौधर्म देवलोक में स्थिति दो सागरोपम है।

सूत्र— अधिके च॥35॥

अर्थ— ईशान देवलोक में उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम झाझेरी (कुछ अधिक) है।

सूत्र— सप्त सानत्कुमारे॥36॥

अर्थ— सानत्कुमार देवलोक में स्थिति 7 सागरोपम है।

**सूत्र— विशेषत्रिसप्त दशैकादश त्रयोदशपञ्चदश-
भिरधिकानि च॥37॥**

अर्थ— माहेन्द्र देवलोक में सात सागरोपम से अधिक, ब्रह्मलोक में दस, लान्तक में चौदह, महाशुक्र में सतरह, सहस्रार में अठारह, आनत एवं प्राणत में बीस और आरण एवं अच्युत में बाईस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है।

सूत्र— आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धे च॥38॥

अर्थ— आरण और अच्युत से ऊपर से ऊपर नौ ग्रैवेयक, चार विजयादि अनुत्तर विमान और सर्वार्थ सिद्ध में क्रम से एक–एक सागरोपम बढ़ती हुई स्थिति है।

प्रश्न— वैमानिक देवों की उत्कृष्ट स्थिति बतलाइए।

उत्तर— बारह देवलोकों में पहले देवलोक में दो सागरोपम, दूसरे में दो सागरोपम से कुछ अधिक, तीसरे में सात सागरोपम, चौथे में सात सागरोपम से अधिक, पाँचवें में 10 सागरोपम, छठे में 14 सागरोपम, सातवें में 17 सागरोपम, आठवें में 18 सागरोपम, नवें–दसवें में 20 सागरोपम और ग्यारहवें–बारहवें में 22 सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है। प्रथम ग्रैवेयक से नवें ग्रैवेयक तक क्रमशः 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31 सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है। पहले चार अनुत्तर विमान में 32 सागरोपम तथा सर्वार्थसिद्ध में तैंतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है।

नोट :– आगमानुसार चार अनुत्तर विमान की उत्कृष्ट स्थिति 33 सागरोपम की होती है।

सूत्र— अपरा पल्योपममधिकं च ॥39॥

अर्थ— पहले देवलोक में एक पल्योपम तथा दूसरे देवलोक में एक पल्योपम से कुछ अधिक जघन्य स्थिति है।

सूत्र— सागरोपमे ॥40॥

अर्थ— सानत्कुमार में जघन्य स्थिति दो सागरोपम की है।

सूत्र— अधिके च ॥41॥

अर्थ— माहेन्द्र में दो सागरोपम से कुछ अधिक है।

सूत्र— परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥42॥

अर्थ— पहले–पहले कल्प की उत्कृष्ट आगे–आगे के कल्पों में जघन्य स्थिति है।

प्रश्न— वैमानिक देवों की जघन्य स्थिति लिखिए।

उत्तर— वैमानिक की जघन्य स्थिति इस प्रकार है— पहले देवलोक की एक पल्योपम, दूसरे की एक पल्योपम से कुछ अधिक, तीसरे में दो सागरोपम, चौथे में दो सागरोपम से कुछ अधिक, पाँचवें से आगे के सभी देवलोकों में जघन्य स्थिति वही है जो अपने से पूर्व देवलोकों में उत्कृष्ट स्थिति है। यह क्रम चार अनुत्तर विमान पर्यन्त रहता है। सर्वार्थसिद्ध की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति में कोई अन्तर नहीं है। लोकान्तिक देवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट दोनों स्थिति आठ सागरोपम की होती है।

सूत्र— नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥43॥

अर्थ— इसी प्रकार दूसरे–तीसरे आदि नरकों में भी जघन्य स्थिति है।

सूत्र— दश वर्ष सहस्राणि प्रथमायाम् ॥44॥

अर्थ— पहले नरक में दस हजार वर्ष की जघन्य आयु है।

प्रश्न— सातों नरक में जघन्य स्थिति बतलाइए।

उत्तर— प्रथम नरक में 10 हजार वर्ष, दूसरी से सातवीं नरक में क्रमशः 1, 3, 7, 10, 17, 22 सागरोपम की जघन्य स्थिति है।

सूत्र— भवनेषु च ॥45॥

अर्थ— भवनपतियों की भी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष है।

सूत्र— व्यन्तराणां च ॥46॥

अर्थ— व्यन्तर देवों की भी जघन्य स्थिति दस हजार हजार वर्ष ही है।

सूत्र— परा पल्योपमम् ॥47॥

अर्थ— व्यन्तरों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम प्रमाण है।

प्रश्न— प्रथम दो निकायों के देवों की स्थिति कितनी है?

उत्तर— भवनपति, वाणव्यन्तर की जघन्य स्थिति 10 हजार वर्ष है। भवनपति की उत्कृष्ट पहले बता दी है, व्यन्तर देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम है।

सूत्र— ज्योतिष्काणामधिकम् ॥48॥

अर्थ— सूर्य और चन्द्र ज्योतिष्क इन्द्रों व ज्योतिष्कों की स्थिति पल्योपम से कुछ अधिक है।

प्रश्न— आगमानुसार चन्द्र, सूर्य देवों तथा देवियों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी होती है?

उत्तर— चन्द्र देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की तथा सूर्य देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है। चन्द्र देवियों की उत्कृष्ट स्थिति पचास हजार वर्ष अधिक आधा पल्योपम की होती है। सूर्य देवियों की उत्कृष्ट स्थिति पाँच सौ वर्ष अधिक आधा पल्योपम की होती है।

सूत्र— ग्रहाणामेकम् ॥49॥

अर्थ— ग्रहों की एक–एक पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति है।

सूत्र— नक्षत्राणामर्धम् ॥50॥

अर्थ— नक्षत्रों की उत्कृष्ट स्थिति आधे पल्योपम की है।

सूत्र— तारकाणां चतुर्भागः ॥51॥

अर्थ— ताराओं की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम के चौथे भाग परिमाण है।

सूत्र— जघन्यात्वष्टभागः ॥52॥

अर्थ— ताराओं की जघन्य स्थिति एक पल्योपम के आठवें भाग परिमाण है।

सूत्र— चतुर्भागः शेषाणाम् ॥53॥

अर्थ— ताराओं के सिवाय बाकी के ज्योतिष्कों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम का चौथा भाग परिमाण है।

प्रश्न— ज्योतिष्क देवों की स्थिति लिखिए।

उत्तर— ज्योतिष्क देवों की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति निम्न है :–

ज्योतिष्क देव	जघन्य	उत्कृष्ट
1. चन्द्र	एक पल्योपम का चतुर्थ भाग	कुछ अधिक एक पल्योपम

ज्योतिष्क देव	जघन्य	उत्कृष्ट
2. सूर्य	एक पल्योपम का चतुर्थ भाग	कुछ अधिक एक पल्योपम
3. ग्रह	एक पल्योपम का चतुर्थ भाग	एक पल्योपम
4. नक्षत्र	एक पल्योपम का चतुर्थ भाग	आधा पल्योपम
5. तारा	एक पल्योपम का आठवाँ भाग	एक पल्योपम का चतुर्थ भाग

पाँचवाँ अध्याय

इस अध्याय में षट् द्रव्य के साथ अजीव तत्त्व का वर्णन किया गया है। अजीव का अर्थ है– जो जीव न हो। अर्थात् उपयोग लक्षण रहित। जिसमें उपयोग (ज्ञान–दर्शन) न हो, चेतना का सद्भाव न हो, ऐसा अचेतन द्रव्य अजीव कहलाता है।

अजीवकाय के भेद–

अजीव काया धर्माऽधर्माकाश पुद्गलाः।1।

अर्थ– अजीवकाय के चार भेद हैं– 1.धर्मास्तिकाय, 2.अधर्मास्तिकाय, 3.आकाशास्तिकाय और 4.पुद्गलास्तिकाय।

प्रश्न– अस्तिकाय किसे कहते हैं?

उत्तर– प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते हैं अथवा जो द्रव्य अस्तित्व वाले भी हैं, और बहुप्रदेश वाले भी हैं, उन्हें अस्तिकाय कहते हैं। बहुप्रदेशों की अपेक्षा से ही यहाँ चार अस्तिकाय रूप अजीव के भेद बतलाये हैं। काल द्रव्य अप्रदेशी होने से उसे अस्तिकाय नहीं गिना जाता है।

मूल द्रव्य–

द्रव्याणि जीवाश्च।2।

अर्थ– धर्मास्तिकाय आदि चार अजीव द्रव्य और जीवास्तिकाय ये पाँच द्रव्य हैं।

काल को अस्तिकाय रूप न मानने से तथा कतिपय आचार्यो द्वारा काल को स्वतन्त्र द्रव्य न मानने से यहाँ द्रव्यों की संख्या पाँच बतलायी गयी है। परन्तु उत्तराध्ययन सूत्र के 28वें अध्ययन में छः द्रव्यात्मक लोक कहकर द्रव्यों की संख्या छः बतलायी है। जैसाकि कहा है–

धम्मो अधम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो।
एस लोगुत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसीहिं॥28/7॥

अर्थात् सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेश्वर भगवन्तों ने धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव के समूह को लोक कहा है। अर्थात् लोकाकाश में छहों द्रव्य रहते हैं।

सामान्य लक्षण–

नित्यावस्थितान्यरूपाणि।3।

अर्थ– पाँचों द्रव्य नित्य हैं, अवस्थित हैं और अरूपी हैं।

प्रस्तुत सूत्र में पाँचों द्रव्यों को नित्य कहा है, क्योंकि ये द्रव्य अपने मौलिक स्वरूप की अपेक्षा अनादि अनन्त हैं। अपने सामान्य और विशेष रूप को नहीं छोड़ते इस कारण अवस्थित हैं, स्थिर हैं। इनकी संख्या में न्यूनाधिकता नहीं होती। पुद्गलास्तिकाय को छोड़कर शेष चार द्रव्य अरूपी हैं। नित्य और अवस्थित ये दोनों, पाँचों द्रव्यों के समान लक्षण तथा अरूपीपन पुद्गल के अतिरिक्त शेष चार द्रव्यों के समान लक्षण हैं।

प्रश्न– नित्यत्व और अवस्थितत्व में क्या अन्तर है?

उत्तर– अपने स्वरूप को नहीं छोड़ना नित्यत्व कहलाता है, जबकि पराये स्वरूप को प्राप्त नहीं करना अवस्थितत्व कहलाता है। नित्यत्व से जगत् की शाश्वतता तथा अवस्थितत्व से एक–दूसरे के स्वरूप को प्राप्त नहीं करना, प्रकट होता है।

पुद्गल का रूपित्व–

रूपिणः पुद्गलाः।4।

अर्थ– पुद्गल रूपी है।

प्रश्न– पुद्गल किसे कहते हैं?

उत्तर– जो उत्पन्न हो और नष्ट हो अर्थात् सड़न–गलन–विध्वंसन जिसका लक्षण हो, उसे पुद्गल कहते हैं। संसार में हमें जितनी भी वस्तुएँ दिखाई दे रही हैं, प्रायः वे सब पुद्गल के ही विभिन्न रूप (पर्याय) हैं। बादर (स्थूल) पुद्गल ही इन्द्रियों द्वारा गृहीत होते हैं।

प्रश्न– रूपी किसे कहते हैं?

उत्तर– जिसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श हो, उसे रूपी कहते हैं। रूप, मूर्तत्व, मूर्त्तिक ये शब्द रूपी के ही पर्यायवाची हैं। सभी प्रकार के पुद्गल रूपी ही होते हैं, अरूपी नहीं।

द्रव्यों की संख्या–

आ आकाशादेक द्रव्याणि।5।

अर्थ– आकाश द्रव्य तक के कहे गये द्रव्य अर्थात् धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, ये तीनों द्रव्य गिनती में एक–एक हैं।

इन तीनों द्रव्यों के दो या दो से अधिक विभाग नहीं होने के कारण इन्हें संख्या की अपेक्षा (द्रव्य से) एक–एक ही कहा गया है। अखण्डता, अविभाज्यता और समग्रता के कारण भी एक–एक माने जाते हैं। अर्थात् धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य अखण्ड हैं, एक हैं, अविभाज्य हैं और समग्र हैं।

अन्य विशेषता–

निष्क्रियाणि च।6।

अर्थ– ये तीनों द्रव्य (धर्म, अधर्म और आकाश) निष्क्रिय भी हैं।

प्रश्न– तीनों द्रव्यों को निष्क्रिय कहने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर– यद्यपि जैन दर्शन के अनुसार सभी द्रव्यों में पर्याय परिणमन (उत्पाद–व्यय) माना जाता है और यह परिणमन क्रियाशील द्रव्यों में ही होता है, तथापि धर्मास्तिकाय आदि तीन द्रव्यों को यहाँ निष्क्रिय कहा गया है। इसका कारण गतिशून्यता है, क्रियामात्र का अभाव नहीं। गतिशून्यता में भी स्वभाव रूप बदलाव नहीं, विभाव रूप बदलाव (परिणमन) ही लेना चाहिये। अर्थात् तीनों द्रव्य विभाव रूप में, विपरीत रूप में कभी भी परिणमन नहीं करते, इस कारण इन्हें निष्क्रिय माना गया है।

प्रदेशों की संख्या–

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मयोः।7।

जीवस्य।8।

आकाशस्यानन्ताः।9।

संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम्।10।

नाणोः।11।

अर्थ– धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के प्रदेश असंख्यात हैं।

एक जीव के प्रदेश असंख्यात हैं।

आकाश के प्रदेश अनन्त हैं।

पुद्गल द्रव्य के प्रदेश संख्यात, असंख्यात और अनन्त भी हैं।

अणु (परमाणु) के प्रदेश नहीं होते।

प्रश्न– प्रदेश किसे कहते हैं?

उत्तर– एक ऐसा सूक्ष्म अंश जिसके दूसरे अंश की कल्पना भी नहीं की जा सके अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म अविभाज्य अंश जो स्कन्ध (सम्पूर्ण वस्तु) के साथ मिला (चिपका) रहें, स्वतन्त्र नहीं हो, उसे प्रदेश कहते हैं।

प्रश्न– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, एक जीव और लोकाकाश इन चारों के कितने–कितने प्रदेश होते हैं?

उत्तर– धर्म, अधर्म, एक जीव और लोकाकाश, इन चारों के प्रदेश असंख्यात–असंख्यात होते हैं। अर्थात् चारों के प्रदेशों में कोई न्यूनाधिकता नहीं होती, चारों बराबर होते हैं, यहीं कारण है कि केवली समुद्घात करने पर उसके चौथे समय में उस जीव के प्रदेश सम्पूर्ण लोक के आकाश प्रदेशों पर फैल जाते हैं।

प्रश्न– आकाश को अनन्त प्रदेशी किस अपेक्षा से माना गया है?

उत्तर– यद्यपि सम्पूर्ण लोक में फैले हुए आकाश द्रव्य में असंख्यात प्रदेश ही होते हैं, तथापि आकाश द्रव्य अलोक में भी फैला होने के कारण इसे अनन्त प्रदेशी माना गया है। अर्थात् अलोक में मात्र आकाश द्रव्य ही है और वहाँ अनन्त प्रदेशी होता है।

प्रश्न– पुद्गल द्रव्य को संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेशी क्यों माना है?

उत्तर– पुद्गल द्रव्य परमाणु, स्कन्ध, देश और प्रदेश, इन चारों अवस्थाओं में पाया जाता है। कोई पुद्गल संख्यात प्रदेशी स्कन्ध, कोई असंख्यात प्रदेशी तो कोई अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध रूप भी होते हैं। पुद्गल द्रव्य में मिलने–बिछुड़ने, संयोग–वियोग आदि का गुण होने के कारण सभी अवस्थाएँ बनती–बदलती रहती हैं, इसी कारण इसे संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेशी माना गया है।

प्रश्न– परमाणु को अप्रदेशी क्यों कहा गया है?

उत्तर– क्योंकि परमाणु पुद्गल का सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं अविभाज्य ऐसा अंश है, जिसका भी कोई दूसरा विभाग न किया जा सके, दूसरे अंश की कल्पना भी न हो सके, इस कारण उसे अप्रदेशी माना गया है।

प्रश्न– प्रदेश और परमाणु में क्या अन्तर है?

उत्तर– प्रदेश और परमाणु दोनों ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अविभाज्य (जिसका दूसरा भाग न हो सके) अंश होने पर भी दोनों में प्रमुख अन्तर यह है कि प्रदेश तो स्कन्ध के साथ मिला हुआ रहता है, जबकि परमाणु स्वतन्त्र होता है, मिला हुआ नहीं।

द्रव्यों का स्थिति क्षेत्र–

लोकाकाशेऽवगाह।12।

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने।13।

एक प्रदेशादिषु भाज्यः पुद्‌गलानाम्।14।

असंख्येय भागादिषु जीवानाम्।15।

प्रदेशसंहार विसर्गाभ्यां प्रदीपवत्।16।

अर्थ– (ठहरने वाले) द्रव्यों की स्थिति लोकाकाश में ही है।

धर्म और अधर्म द्रव्यों की स्थिति सम्पूर्ण लोकाकाश में है।

पुद्‌गलों की स्थिति लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प (अनिश्चित रूप) से है।

जीवों की स्थिति लोक के असंख्यातवें भाग आदि में होती है।

प्रदीप की भाँति जीव के प्रदेशों का संकोच और विस्तार होता है।

धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाशास्ति ये तीनों सम्पूर्ण लोक में फैले हुए हैं, किन्तु पुद्‌गल लोकाकाश के एक प्रदेशादि में भी रहे हुए हैं।

प्रश्न– पुद्‌गल लोक में किस प्रकार से स्थित रहते हैं?

उत्तर– कोई पुद्‌गल लोकाकाश के एक प्रदेश में और कोई दो प्रदेशों में रहता है। कोई पुद्‌गल असंख्यात प्रदेश परिमित लोकाकाश में भी रहता है। एक परमाणु एक ही आकाश प्रदेश में स्थित रहता है, पर दो परमाणुओं से बना दो प्रदेशी स्कन्ध एक प्रदेश पर भी ठहर सकता है और दो पर भी। इसी प्रकार आगे बढ़ते–बढ़ते तीन प्रदेशी, चार प्रदेशी यावत् संख्यात प्रदेशी स्कन्ध भी एक प्रदेश, दो प्रदेश, तीन प्रदेश यावत् संख्यात प्रदेश परिमित क्षेत्र में ठहर सकते हैं। इसी प्रकार असंख्यात और अनन्त प्रदेशी स्कन्ध भी एक–दो–तीन प्रदेश आदि बढ़ते–बढ़ते संख्यात और असंख्यात प्रदेश वाले क्षेत्र में ठहर सकते हैं, उनकी स्थिति के लिये अनन्त प्रदेशात्मक क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है। पुद्‌गल द्रव्य का एवं अनन्तानन्त परमाणुओं का बना सबसे बडा अचित्त महास्कन्ध भी असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश में ही समा जाता है।

प्रश्न– जीव के प्रदेशों को दीपक के समान संकोच विस्तार वाले क्यों माने हैं?

उत्तर– जिस प्रकार से जलते दीपक को खुले कमरे में रखने पर उसका प्रकाश पूरे कमरे में, कुण्डे के नीचे रखने पर कुण्डे में, थाली के नीचे रखने पर थाली में तथा कटोरी के नीचे रखने पर कटोरी तक में ही सिमट जाता है, फैल पाता है। ठीक उसी प्रकार जीवों को भी अपने–अपने कर्मानुसार जैसा शरीर मिलता है, जितनी शरीर की लम्बाई–चौड़ाई होती है, उसी अनुपात में जीव के असंख्यात प्रदेश सिमट कर रहते हैं। जैसे–जैसे शरीर बढ़ता है, वैसे–वैसे आत्म प्रदेश भी फैलते जाते हैं। केवली समुद्‌घात के चौथे समय में वे ही आत्म–प्रदेश पूरे लोक में भी फैल जाते हैं। अर्थात् कीड़ी का शरीर मिला तो जीव के प्रदेश संकुचित हो गये और हाथी का विशाल शरीर मिला तो विस्तार को प्राप्त हो गये, सभी

अवस्थाओं में प्रदेशों की संख्या असंख्यात (बराबर) ही रहती है, इसी कारण संकोच विस्तार गुण वाले माने गये हैं।

प्रश्न– सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव भी लोक के असंख्यातवें भाग में ही रहता है, लोक के एक–दो प्रदेशों पर क्यों नहीं रह पाता?

उत्तर– सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थात् छोटे से छोटे जीव के भी तैजस कार्मण शरीर तो होते ही हैं, तथा जीव असंख्यात प्रदेश वाला ही होता है, इस कारण से अपने शरीर की अवगाहना छोटी से छोटी प्राप्त करे तब भी अंगुल का असंख्यातवाँ भाग ही कर पाता है, इससे छोटी नहीं। अंगुल का असंख्यातवाँ भाग शरीर लोक के असंख्यातवें भाग में ही रह पाता है। एक, दो प्रदेशों पर नहीं। यह भाग भी असंख्यात प्रदेशात्मक ही होता है।

प्रश्न– असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश में शरीरधारी अनन्त जीव और पुद्‌गल कैसे समा सकते हैं?

उत्तर– सूक्ष्मभाव में परिणत होने से निगोद शरीर से व्याप्त एक ही आकाश क्षेत्र में साधारण वनस्पति के अनन्त जीव एक साथ रहते ही हैं। मनुष्य आदि के एक औदारिक शरीर के ऊपर तथा अन्दर अनेक सम्मूर्च्छिम जीव रहते हैं। जैसे– एक कमरे में सैकड़ों प्रकार की स्वर लहरियाँ–तरंगे विद्यमान रहती हैं। जब जैसा बटन चालू करें वैसी ही स्वर लहरी हमें रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन आदि के माध्यम से सुनाई–दिखाई देती है। इसी प्रकार लोकाकाश में अनन्तानन्त जीव और पुद्‌गल भी सूक्ष्मभाव में परिणत होने के कारण समा जाते हैं।

द्रव्यों के कार्य और लक्षण–

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरूपकारः।17।

आकाशस्यावगाहः।18।

शरीरवाङ् मनः प्राणापानाः पुद्‌गलानाम्।19।

सुख-दुःख-जीवितमरणोपग्रहाश्च।20।

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।21।

वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य।22।

अर्थ– गति और स्थिति में निमित्त बनना क्रमशः धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय का कार्य है।

अवगाह (स्थान) देना आकाशास्तिकाय का गुण अथवा कार्य है।

शरीर, वाणी, मन, श्वास और उच्छ्‌वास ये पुद्‌गलों के कार्य हैं।

सुख–दुःख, जीवन और मरण भी पुद्‌गलों के कार्य (उपकार) हैं।

परस्पर के कार्य में निमित्त (सहायक) होना जीवों का उपकार है।

वर्तना, परिणाम, क्रिया और परत्व–अपरत्व, ये काल (द्रव्य) के उपकार हैं।

प्रश्न– धर्मास्तिकाय को गति में निमित्त किस प्रकार माना गया है?

उत्तर– धर्मास्तिकाय जीव और पुद्गल इन दोनों की गति में उदासीन निमित्त रूप से सहायक माना गया है। जीव और पुद्गल को धर्मास्तिकाय गति नहीं करा सकती, किन्तु धर्मास्तिकाय के बिना निमित्त के ये चल भी नहीं सकते। यहाँ तक कि पलकों का हिलना, रक्त का शरीर में संचरित होना, श्वास आदि लेना–छोड़ना, ये सभी गति सम्बन्धी कार्यों में भी धर्मास्तिकाय निमित्त बनती ही है। पानी और मछली का दृष्टान्त। अर्थात् मछली पानी के बिना नहीं चल सकती, पानी मछली को जबरदस्ती चला नहीं सकता, मछली जब भी चलेगी अपनी इच्छाशक्ति से ही चलेगी, परन्तु चलते समय पानी सहायक होगा ही।

प्रश्न– अधर्मास्तिकाय स्थिति में किस प्रकार निमित्त बनता है?

उत्तर– अधर्मास्तिकाय जीव और पुद्गलों के ठहरने (स्थिति) में निमित्त बनता है। जीव और पुद्गल को ये जबरदस्ती नहीं रोक सकता। सभी स्थिर पदार्थों के स्थिर रहने में अधर्मास्तिकाय निमित्त है। जैसे पेड़ की छाया को देखकर थका हुआ पथिक रूक जाता है, तथा थोड़ी देर बाद फिर आगे बढ़ जाता है। पेड़ की छाया पहले भी थी, बाद में भी रहेगी, परन्तु पथिक को वह मजबूरन नहीं रोक सकती, यही स्थिति अधर्मास्तिकाय की समझी जा सकती है।

प्रश्न– आकाश द्रव्य को अवगाहन गुण वाला क्यों कहा है?

उत्तर– क्योंकि यही एक ऐसा द्रव्य है जिसमें सभी द्रव्यों को अपने भीतर समाहित करने की, अवगाहन करने की शक्ति है। यह अरूपी द्रव्य होते हुए भी रूपी–अरूपी सभी द्रव्यों को जगह देता है। आकाश स्वयं अपने आप पर ही स्थित रह जाता है, उसे किसी दूसरे सहारे की आवश्यकता ही नहीं है।

प्रश्न– शरीर, वाणी, मन और श्वासोच्छ्वास को पुद्गल के उपकार क्यों माने गये हैं?

उत्तर– पाँचों शरीर, वाणी, मन और श्वासोच्छ्वास ये सभी पुद्गल वर्गणाओं से ही निर्मित हैं। इनमें पुद्गल द्रव्य का मुख्यता से उपयोग होने से इन्हें पुद्गल द्रव्य के उपकार माने हैं।

प्रश्न– सुख–दु:ख–जीवन–मरण को पौद्गलिक उपकार क्यों कहें?

उत्तर– सुख–दु:ख साता–असाता वेदनीय तथा सुखी–दु:खी मोहनीय कर्म के कारण से होते हैं, जीवन–मरण आयुष्यादि कर्मो के कारण से होते हैं। ये सभी कर्म भी पौद्गलिक होने से सुख–दु:ख, जीवन और मरण भी पुद्गल के उपकार (कार्य) कहे गये हैं।

प्रश्न– 'एक–दूसरे का सहयोगी होना' जीवों का कार्य क्यों माना है?

उत्तर– जीव एक–दूसरे के सहयोगी बनते हैं, जैसे– सन्तजन उपदेशादि देकर गृहस्थों पर उपकार करते हैं, मालिक सेवकों को वेतन आदि देकर तथा सेवक स्वामियों की सेवा करके उपकार करते हैं। समस्त प्राणी एक–दूसरे के उपकार (सहयोग) पर आश्रित होने से इसे जीवों का कार्य माना गया है।

प्रश्न– वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व का क्या आशय है?

उत्तर– **वर्तना–** प्रत्येक द्रव्य जो अपनी निजी शक्ति से पर्याय रूप (उत्पाद–व्यय) परिणमन करता है, उसमें निमित्त कारण बनना, वर्तन गुण में सहकारी बनना 'वर्तना' है।

परिणाम– अपनी जाति को छोड़े बिना जो पूर्व अवस्था की निवृत्ति तथा उत्तर अवस्था की उत्पत्ति रूप परिणमन होता है, उसे 'परिणाम' कहते हैं। ये जीवों में ज्ञानादि तथा क्रोधादि रूप और पुद्गलों में काला–नीला–लाल–पीला–सफेद वर्णादि रूप होते हैं।

क्रिया– परिस्पन्द रूप अथवा गमन रूप अवस्था 'क्रिया' है।

परत्व–अपरत्व– परत्व का अर्थ– ज्येष्ठता, बडापन अथवा प्रमुखता है, जबकि अपरत्व का अर्थ– कनिष्ठता, छोटापन अथवा गौणता है। जैसे– राम श्याम से 2 वर्ष बडा है आदि।

ये सभी काल द्रव्य के कार्य (उपकार) हैं, क्योंकि इनमें काल उदासीन रूप से सहायक (निमित्त) बनता है।

पुद्गल के असाधारण पर्याय–

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥23॥

शब्द बन्ध सौक्ष्म्यस्थौल्य संस्थान भेदतमश्छायातपोद्योत- वन्तश्च ॥24॥

अर्थ– पुद्गल स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण वाले होते हैं।

वे शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत वाले भी होते हैं।

प्रश्न– पुद्गल के मुख्य लक्षण क्या हैं?

उत्तर– पुद्गल के मुख्य लक्षण– स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण हैं। क्योंकि ये वर्णादि, पुद्गल के अलावा अन्य किसी में नहीं पाये जाते हैं। प्रायः पुद्गल में 5 वर्ण, 2 गन्ध, 5 रस और 8 स्पर्श पाये जाते हैं। शब्द पुद्गल का मूल गुण नहीं है। परमाणु में शब्द नहीं होता, परन्तु स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये चारों तो होते ही हैं।

प्रश्न– शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व और संस्थान को पौद्गलिक क्यों कहा गया है?

उत्तर– 'शब्द' भाषा वर्गणा के पुद्गलों का एक विशिष्ट परिणाम है, जिससे अर्थ का प्रतिपादन होता है। बन्ध अर्थात् संयोग, मिलना, परस्पर सम्बन्ध हो जाना, ये भी पुद्गलों में ही हो पाता है। सूक्ष्मत्व और स्थूलत्व अर्थात् छोटा–बड़ा इस प्रकार की तुलना भी पौद्गलिक पदार्थों में ही होती है। संस्थान अर्थात् आकार उसी का होता है, जिसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श पाये जाते हैं। ये सभी गुण पुद्गल के होने के कारण शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व और संस्थान को पौद्गलिक कहा गया है।

प्रश्न– भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत पौद्गलिक क्यों हैं?

उत्तर– स्कन्ध रूप पुद्गल पिण्ड का टूटना, विभाग होना 'भेद' कहलाता है। देखने में रूकावट डालने वाला, प्रकाश का विरोधी पुद्गल 'अन्धकार' है। पौद्गलिक वस्तुओं का प्रतिबिम्ब, परछायी 'छाया' है। जो स्वयं शीतल हो और दूसरों को उष्ण प्रकाश दे, जैसे– सूर्य–विमान का प्रकाश यह 'आतप' है। चन्द्रमा, मणि, जुगनू आदि का शीतल प्रकाश 'उद्योत' है। अतः भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत, ये सभी पुद्गल रूप होने से, पुद्गल की पर्यायें (अवस्थाएँ) होने से पौद्गलिक कहलाते हैं।

प्रश्न– सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व को उदाहरण सहित समझाइये।

उत्तर– सबसे अधिक सूक्ष्म पुद्गल–परमाणु है। परमाणुओं के मिलने से जो स्कन्ध बनते हैं वे एक–दूसरे की अपेक्षा सूक्ष्म अथवा स्थूल होते हैं, जैसे– सौ प्रदेशी स्कन्ध, दो, पाँच, दस, पचास आदि प्रदेशों से बने स्कन्ध से स्थूल है, किन्तु वही स्कन्ध दो सौ, पाँच सौ, हजार आदि प्रदेशों से बने स्कन्ध से सूक्ष्म है। आँवले की अपेक्षा आम स्थूल है और आम की अपेक्षा खरबूजा स्थूल है।

पुद्गल के मुख्य प्रकार–

अणवः स्कन्धाश्च।25।

अर्थ– पुद्‌गल परमाणु रूप और स्कन्ध रूप है।

परमाणु पुद्‌गल की शुद्ध एवं स्वाभाविक अवस्था है, जबकि स्कन्ध पुद्‌गल की अशुद्ध एवं वैभाविक अवस्था है। परमाणु सबसे सूक्ष्म एवं अविभाज्य अंश है, जबकि स्कन्ध अनेक परमाणुओं से मिलकर बनता है। यह दो प्रदेशी से लेकर संख्यात–असंख्यात–अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेशी भी हो सकता है।

प्रश्न– संसार में दिखाई देने वाले पुद्‌गल कितने प्रदेशी स्कन्ध होते हैं?

उत्तर– जो भी पुद्‌गल हमें आँखों से दिखाई देते हैं अथवा इन्द्रियादि से जानने में आते हैं, वे सब अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध ही होते हैं। इनमें भी जो स्थूल भाव में परिणत होते हैं, वे ही हमें दिखाई देते हैं। सूक्ष्म भाव में परिणत पुद्‌गल चाहे वे संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त प्रदेशी ही क्यों न हो, फिर भी सामान्य लोगों को दिखाई नहीं देते हैं।

स्कन्ध और परमाणु की उत्पत्ति के कारण–

संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते।26।

भेदादणुः।27।

अर्थ– संघात से, भेद से और संघात–भेद दोनों से स्कन्ध उत्पन्न होते हैं।

अणु (परमाणु) भेद से ही उत्पन्न होता है।

प्रश्न– संघात, भेद और संघात–भेद ये तीनों स्कन्ध की उत्पत्ति के कारण क्यों माने गये हैं?

उत्तर– स्कन्ध अनेक परमाणुओं का समूह होता है। दो–तीन आदि परमाणुओं के मिलने पर दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि स्कन्ध बनते हैं, इस अपेक्षा से संघात (मिलने से) स्कन्ध की उत्पत्ति मानी है। बड़े स्कन्ध टूटने, बिखरने से छोटे स्कन्ध बन जाते हैं, उन छोटे टुकड़ों में भी अनेक परमाणु होते हैं, इस कारण भेद (टूटने–बिखरने, बिछुड़ने) से भी स्कन्ध की उत्पत्ति मानी है। स्कन्ध में कुछ परमाणु नये मिल जाये तथा कुछ अलग हो जाये अर्थात् संघात और भेद (मिलना–अलग होना) दोनों होने पर भी स्कन्ध, स्कन्ध के रूप में ही बना रहता है। इस प्रकार संघात, भेद और संघात–भेद इन तीनों अवस्थाओं से स्कन्ध का उत्पन्न होना बतलाया गया है।

प्रश्न– परमाणु भेद से ही क्यों बनता है?

उत्तर– क्योंकि परमाणु सूक्ष्म, अविभाज्य एवं स्वतन्त्र पुद्‌गल है, ऐसी अवस्था स्कन्ध के टूटने, अलग होने पर ही बन पाती है, स्कन्ध रूप में रहने पर नहीं। इस कारण से परमाणु की उत्पत्ति स्कन्ध के भेद (टूटने) से ही बनती है।

इन्द्रियगोचर स्कन्ध–

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः।28।

अर्थ– चक्षु इन्द्रिय से दिखाई देने वाला स्कन्ध भेद और संघात दोनों से ही बनता है।

प्रश्न– चक्षु इन्द्रिय से दिखाई देने वाले स्कन्ध के लिये भेद और संघात दोनों क्यों आवश्यक हैं?

उत्तर– जो पुद्‌गल का स्कन्ध पहले सूक्ष्म होने से आँखों से दिखाई नहीं देता था, वही अपने सूक्ष्म भाव को छोड़कर स्थूल भाव में परिवर्तित होने पर आँखों से दिखाई दे सकता है। स्थूल भाव में बदलने में उस स्कन्ध में भेद और संघात दोनों की आवश्यकता रहती है। क्योंकि उसे इसके लिये सूक्ष्म भाव को छोड़ना पड़ेगा तथा स्थूल भाव को धारण करना पड़ेगा। ये दोनों अवस्थाएँ कुछ नये परमाणु के मिलने अर्थात् संघात से तथा कुछ के अलग होने अर्थात् भेद से ही संभव है।

सत् की व्याख्या–

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।29।

तद्भावाव्ययं नित्यम्।30।

अर्पितानर्पित सिद्धेः।31।

अर्थ– जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, इन तीनों से युक्त है, वही सत् है।

जो अपने भाव (स्वभाव, जाति) से कभी अलग न हो, विनाश रहित हो, उसे नित्य कहते हैं।

अर्पित (मुख्यता) और अनर्पित (गौणता) इन दोनों से सत् (वस्तु) की सिद्धि होती है।

प्रश्न– सत् किसे कहते हैं?

उत्तर– जिसमें उत्पन्न होना (उत्पाद), नष्ट होना (व्यय) और स्थिर रहना (ध्रौव्य), ये तीनों विशेषताएँ सदैव एक साथ पायी जाय, उसे सत् (द्रव्य) कहते हैं। संसार के सभी पदार्थों में उत्पत्ति और विनाश पर्याय की अपेक्षा से तथा स्थिति–मूल गुणों की अपेक्षा से पायी ही जाती है। जैसे– सोने के कंगन को तोड़कर हार बनवाना, हार को तुड़वाकर कन्दोरा बनवाना। इनमें कंगन से हार बनवाने में कंगन पर्याय का व्यय और हार पर्याय का उत्पाद हुआ। हार से कन्दोरा बनवाने में हार पर्याय का व्यय और कन्दोरा पर्याय का उत्पाद हुआ, किन्तु सभी अवस्थाओं (पर्यायों) में सोना तो विद्यमान (स्थित) है ही।

प्रश्न– अर्पित और अनर्पित से पदार्थों की सिद्धि कैसे होती है?

उत्तर– प्रत्येक पदार्थ सामान्य और विशेष गुणों से युक्त होता है। पदार्थ का कथन करते समय किसी एक गुण विशेष को प्रमुखता देंगे, उस समय पदार्थ में रहे हुए अन्य गुण गौण हो जायेंगे। जब दूसरे गुण को प्रमुखता देकर कथन करेंगे तो पहले वाला प्रमुख गुण अब गौण हो जायेगा। इस प्रकार प्रधान (प्रमुखता) और अप्रधान (गौणता) रूप से पदार्थो का स्वरूप जाना जाता है। जैसे– यह कहना कि "जैन सन्त पूर्ण अहिंसक होते हैं।" यहाँ अहिंसा गुण की प्रधानता तथा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि गुणों की गौणता है।

पौद्‌गलिक बन्ध के हेतु, अपवाद आदि का वर्णन–

स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्धः।32।

न जघन्य गुणानाम्।33।

गुणसाम्ये सदृशानाम्।34।

द्व्यधिकादिगुणानां तु।35।

अर्थ– पुद्‌गलों का बन्ध स्निग्धता (चिकनाई) और रूक्षता (रूखापन) से होता है।

जघन्य गुण (अंश) वाले स्निग्ध और रूक्ष परमाणु में बन्ध नहीं होता।

गुणों (अंशों) के समान होने पर अर्थात् स्निग्ध के साथ स्निग्ध का और रूक्ष के साथ रूक्ष का बन्ध नहीं होता। किन्तु दो गुण (अंश) अधिक वाले आदि परमाणुओं का बन्ध होता है।

प्रश्न– बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर– स्निग्ध और रूक्ष पुद्‌गल जब एक–दूसरे का स्पर्श करते हैं, तब उनमें परस्पर सम्बन्ध हो जाता है, वे एकमेक (एक क्षेत्रावगाह) हो जाते हैं, उसे बन्ध कहते हैं। जैसे– आत्मा पर पूर्व में बन्धे कर्मों के साथ नये कर्म पुद्‌गल बन्ध जातेहैं।

प्रश्न– जघन्य गुण वाले स्निग्ध–रूक्ष परमाणुओं में बन्ध क्यों नही होता?

उत्तर– जिन पुद्‌गलों में स्निग्धता अथवा रूक्षता का जघन्य अर्थात् सबसे कम एक अविभागी अंश ही होता है, ऐसे जघन्य गुण वाले पुद्‌गलों में आपस में बन्धन की क्षमता ही नहीं हो पाती, इसी कारण से उनका बन्ध नहीं होता।

प्रश्न– पुद्‌गलों का बन्ध किस प्रकार की अवस्था में होता है?

उत्तर– मध्यम और उत्कृष्ट गुण वाले स्निग्ध व रूक्ष परमाणुओं में बन्ध होता है। इसमें समान अंश वालों में नहीं, बल्कि असमान स्निग्धता, रूक्षता वाले परमाणुओं में बन्ध होता है। अर्थात् स्निग्धता, रूक्षता दो, तीन, चार आदि अंशों में अधिक हो तो बन्ध होता है, केवल एक अंश अधिक होने पर बन्ध नहीं होता।

बन्ध का परिणमन–

बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ।36।

अर्थ– बन्ध के समय सम और अधिक गुण (अंश) वाले पुद्‌गल सम तथा हीन (कम) गुण वाले पुद्‌गलों को परिणमन कराने वाले होते हैं।

प्रश्न– परमाणु (पुद्‌गल) बन्धने के बाद किस रूप में परिणत (बदलना) होते हैं?

उत्तर– स्निग्ध और रूक्ष परमाणु के बन्ध के समय जो अधिक गुण वाला है, वह कम गुण वाले को अपने रूप में परिणमा लेता है, यानी अपने रूप में उसका परिवर्तन कर लेता है, अपने अन्दर समा लेता है।

समान गुण वाले पुद्‌गल जब आपस में बन्धते हैं, तो वे परस्पर एक–दूसरे को अपने–अपने रूप में परिणमाते हैं। कभी स्निग्ध रूप में तो कभी रूक्ष रूप में, अथवा दोनों में से किसी भी रूप में परिणमित हो जाते हैं।

उदाहरण– चार स्निग्ध गुण वाले पुद्‌गल का तीन रूक्ष गुण वाले पुद्‌गल के साथ बन्ध होने पर स्निग्ध गुण वाला पुद्‌गल रूक्ष गुण वाले पुद्‌गल को अपने रूप में अर्थात् स्निग्ध रूप में परिणमा लेगा। यानी दोनों के बन्ध से जो स्कन्ध बनेगा वह स्निग्ध गुण प्रधान होगा।

यदि चार स्निग्ध गुण और चार ही रूक्ष गुण वाले पुद्‌गल का बन्ध हो तो वह स्कन्ध कभी स्निग्ध गुण प्रधान भी हो सकता है तो भी रूक्ष गुण प्रधान भी हो सकता है और कभी–कभी स्निग्धता रूक्षता दोनों समान मात्रा में भी रह सकती है।

द्रव्य का लक्षण (अर्थ)–

गुणपर्यायवद् द्रव्यम्।37।

अर्थ– द्रव्य में गुण और पर्याय होते हैं।

प्रश्न– गुण किसे कहते हैं?

उत्तर– शक्ति विशेष को गुण कहते हैं। गुण द्रव्य में सदैव रहने के कारण ये सहभावी कहलाते हैं। जैसे आत्मा में उपयोग गुण, पुद्गल में वर्णादि गुण।

प्रश्न– पर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर– जो उत्पन्न हो और नष्ट हो, उत्पाद–व्यय स्वभाव वाली हो, उसे पर्याय कहते हैं। पर्यायें क्रमभावी होती है। कोई भी पर्याय द्रव्य में सदा काल स्थाई नहीं होती, जैसे आत्मा में क्रोधादि भाव होना तथा पुद्गल का घट, पट आदि रूप होना।

प्रश्न– पर्याय कितने प्रकार की होती है?

उत्तर– पर्याय– स्वभाव और विभाव की अपेक्षा से दो प्रकार की होती है। जीव और पुद्गल इन दोनों में स्वभाव–विभाव दोनों प्रकार की पर्यायें होती हैं, लेकिन धर्मास्ति, अधर्मास्ति आकाशास्ति और काल इन चारों में सदाकाल स्वभाव पर्यायें ही होती हैं। जीव की पूर्ण स्वभाव पर्याय सिद्ध अवस्था है तथा नर–नारक आदि गतियों में जन्म–मरण करना, रागादि करना विभाव पर्याय हैं। पुद्गल में परमाणु की अवस्था स्वभाव पर्याय तथा स्कन्ध की अवस्था विभाव पर्याय है। पुद्गल तो स्वभाव से विभाव में और विभाव से स्वभाव में जाते–आते रहते हैं, किन्तु जीव की यह विशेषता है कि एक बार पूर्ण स्वभाव दशा–सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेने पर वह फिर कभी–भी विभाव दशा को प्राप्त नहीं होता है। सदाकाल शुद्ध (सिद्ध) ही बना रहता है।

काल का वर्णन–

कालश्चेत्येके।38।

सोऽनन्त समयः।39।

अर्थ– कोई आचार्य काल को भी द्रव्य कहते हैं।

वह अनन्त समय वाला है।

प्रश्न– काल स्वतन्त्र द्रव्य है अथवा नहीं?

उत्तर– यद्यपि कतिपय आचार्यो ने काल को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं माना है, किन्तु उत्तराध्ययन सूत्र के अट्ठाइसवें अध्याय में तथा अनुयोगद्वार सूत्र में काल को स्वतन्त्र द्रव्य माना गया है। लोक में छहों द्रव्यों का अस्तित्व स्वीकार किया है। तत्त्वार्थ सूत्र में भी काल के वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व–अपरत्व आदि लक्षण बतलाये हैं, इनसे भी काल द्रव्य का स्वतन्त्र अस्तित्व प्रकट होता है।

प्रश्न– काल द्रव्य को अप्रदेशी क्यों माना है?

उत्तर– काल के सबसे सूक्ष्म अणु कालाणु कहलाते हैं, जो रत्न राशि के समान परस्पर स्वतन्त्र हैं। जीव के प्रदेशों तथा धर्म, अधर्म, आकाश आदि के प्रदेशों की तरह आपस में सम्बद्ध नहीं होते, समूह रूप में नहीं हो पाते, इस कारण से काल द्रव्य अप्रदेशी होता है, अस्तिकाय रूप नहीं होता है।

प्रश्न– काल को अनन्त समय वाला क्यों कहा गया है?

उत्तर– वर्तमानकालीन 'समय' पर्याय की अपेक्षा तो काल एक ही होता है, परन्तु भूत और भविष्यत् के समय के पर्याय अनन्त होते हैं। इसलिये काल को अनन्त समय वाला कहा गया है। अथवा काल प्रतिसमय अनन्तानन्त जीव और पुद्गलों के परिणमन में उदासीन निमित्त बनता है, इस अपेक्षा से भी अनन्त कहा जा सकता है। उत्तराध्ययन सूत्र के 28वें अध्ययन में काल को अनन्त बतलाया है।

अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो। 28.8

अर्थात काल, जीव और पुद्गल, ये तीनों ही द्रव्य (गिनती) से अनन्त होते हैं।

गुण का स्वरूप–

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः।40।

अर्थ– गुण द्रव्य के आश्रित रहते हैं, किन्तु वे स्वयं निर्गुण होते हैं।

प्रश्न– द्रव्य में रहने वाले गुणों को निर्गुण क्यों कहा हैं?

उत्तर– द्रव्य में सदा पायी जाने वाली मौलिक शक्तियाँ गुण हैं। गुण तो द्रव्य के आश्रित हैं, द्रव्य में हैं, किन्तु गुणों के आश्रित अन्य गुण नहीं रहते, इसलिये गुण स्वयं निर्गुण यानी गुण विहीन होते हैं। जैसे– जीव में ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण रहते हैं, किन्तु ज्ञान, दर्शन के आश्रित अन्य कोई गुण नहीं रहने के कारण ज्ञान–दर्शन आदि गुणों को निर्गुण कहा जाता है।

परिणाम का स्वरूप–

तद्भावः परिणामः।41।

अर्थ– उसका भाव अर्थात् स्वरूप में स्थित रहते हुए उत्पन्न तथा नष्ट होना परिणाम है।

प्रश्न– द्रव्य तथा गुणों का परिणाम क्या है?

उत्तर– द्रव्य तथा गुण अपनी–अपनी जाति का त्याग किये बिना प्रतिसमय निमित्तों के अनुसार भिन्न–भिन्न अवस्थाओं को प्राप्त होते रहते हैं, यही द्रव्यों तथा गुणों के परिणाम हैं। जैसे द्रव्य में नयी पर्याय का उत्पाद, पुरानी पर्याय का व्यय होता रहता है, किन्तु फिर भी द्रव्य अपने स्वरूप में रहता है। आत्मा मुनष्य के रूप में हो अथवा पशु–पक्षी के रूप में, चाहे जिन अवस्थाओं में हो, फिर भी आत्मा (चेतना, उपयोग) बनी रहती है।

परिणाम के भेद–

अनादिरादिमांश्च।42।

अर्थ– वह (परिणाम) अनादि और आदिमान दो प्रकार का होता है।

प्रश्न– अनादि और आदिमान परिणाम किसे कहते हैं?

उत्तर– अनादि परिणाम का अर्थ है– जो सहज, स्वाभाविक रूप से सदा से होने वाला और सदा रहने वाला। अर्थात् जिसकी कोई आदि (शुरूआत) न हो, ऐसा परिणाम धर्म, अधर्म और आकाशास्तिकाय में होता रहता है।

आदिमान– जिन परिणामों के प्रारम्भ होने की आदि हो, समय नियत हो, जो सदाकाल न रहे, उसे आदिमान परिणाम कहते हैं।

आदिमान परिणाम किनमें?

रूपिष्वादिमान्।43।

अर्थ– रूपी अर्थात् पुद्गलों में आदिमान परिणाम होता है।

प्रश्न– रूपी में आदिमान परिणाम क्यों माना है?

उत्तर– क्योंकि रूपी पदार्थों में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श होता है। इन वर्णादि के तरतम भाव के अनुसार अनन्त भेद होते हैं, ये सब अनादि न होकर आदिमान होते हैं, अतः पुद्गलों में आदिमान परिणाम माना गया है।

जीव में परिणाम–

योगोपयोगौ जीवेषु।44।

अर्थ– जीवों में योग और उपयोग आदिमान हैं।

प्रश्न– योग और उपयोग को आदिमान क्यों कहा है?

उत्तर– मन, वचन और काया की प्रवृत्ति रूप योग कर्मों के क्षयोपशम अथवा उदय से सम्बन्धित है, इसी प्रकार ज्ञान–दर्शन रूप उपयोग भी क्षयोपशम अथवा क्षय से सम्बन्धित है। कोई भी कर्म अनादि नहीं है। (प्रवाह की अपेक्षा अनादि कहे जाते हैं।) जब कर्म ही अनादि नहीं तो फिर कर्म से सम्बन्धित योग–उपयोग अनादि कैसे हो सकते हैं? अस्तु योग–उपयोग (संसारी जीवों की अपेक्षा) आदिमान कहे हैं।

॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥

तत्त्व विभाग

जीव पर्याय (पज्जवा) का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र पाँचवाँ पद)

इस थोकड़े में जीव की पर्याय, अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा एकस्थानपतित (एगट्ठाणवडिया), द्विस्थानपतित (दुट्ठाणवडिया), त्रिस्थानपतित (तिट्ठाणवडिया) और चतु:स्थानपतित (चउट्ठाणवडिया) बतलाई गई है एवं पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस और आठ स्पर्श, इन बीस बोलों की अपेक्षा तथा दस उपयोग की अपेक्षा षट्स्थानपतित (छट्ठाणवडिया) और केवलज्ञान, केवलदर्शन की अपेक्षा तुल्य कही गई है। थोकड़े के प्रारंभ में इनका खुलासा कर देने से पाठकों को समझने में सरलता होगी।

एकस्थानपतित- एकस्थानपतित का आशय यहाँ असंख्यात भाग हीन और असंख्यात भाग अधिक है। जैसे- एक युगलिक की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है और दूसरे की तीन पल्योपम की है। अन्तर्मुहूर्त्त, पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग होता है। अतः पहले की स्थिति असंख्यात भाग हीन है और दूसरे की स्थिति असंख्यात भाग अधिक है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य की स्थिति एकस्थानपतित बतलायी जाएगी।

द्विस्थानपतित- द्विस्थानपतित का आशय यहाँ असंख्यात भाग हीन, संख्यात भाग हीन और असंख्यात भाग अधिक, संख्यात भाग अधिक है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों की स्थिति द्विस्थानपतित होती है। जैसे एक नैरयिक की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है और दूसरे की स्थिति पूरे तेतीस सागरोपम की है। अन्तर्मुहूर्त्त तेतीस सागरोपम का असंख्यातवाँ भाग है, अतः पहले नैरयिक की स्थिति असंख्यात भाग हीन और दूसरे की असंख्यात भाग अधिक है। इसी प्रकार एक नैरयिक की स्थिति पल्योपम कम तेतीस सागरोपम की है और दूसरे की पूरे तेतीस सागरोपम की है। चूँकि पल्योपम, सागरोपम का संख्यातवाँ भाग है अतः पहले नैरयिक की स्थिति संख्यात भाग हीन और दूसरे की संख्यात भाग अधिक हुई।

त्रिस्थानपतित- त्रिस्थानपतित का आशय यहाँ असंख्यात भाग हीन, संख्यात भाग हीन, संख्यात गुण हीन तथा असंख्यात भाग अधिक, संख्यात भाग अधिक, संख्यात गुण अधिक से है। आगे अवगाहना और स्थिति त्रिस्थानपतित कहेंगे। जैसे एक जीव की अवगाहना अँगुल के असंख्यातवें भाग कम पाँच सौ धनुष की है और दूसरे की पाँच सौ धनुष की है। अँगुल का असंख्यातवाँ भाग पाँच सौ धनुष का असंख्यातवाँ भाग है। इसलिए पहले जीव की अवगाहना असंख्यात भाग हीन है और दूसरे जीव की अवगाहना पहले की अपेक्षा असंख्यात भाग अधिक है। इसी तरह एक जीव की अवगाहना एक धनुष कम पाँच सौ धनुष की है और दूसरे की अवगाहना पाँच सौ धनुष की है। एक धनुष पाँच सौ धनुष का संख्यातवाँ भाग है अतः पहले जीव की अवगाहना संख्यात भाग हीन है और दूसरे की पहले की अपेक्षा संख्यात भाग अधिक है। इसी तरह एक जीव की अवगाहना 125 धनुष की है और दूसरे जीव की अवगाहना पाँच सौ धनुष की है। 125 को चार से गुणा करने पर पाँच सौ होते हैं। अतः पहले की अवगाहना संख्यात गुण हीन है और उसकी अपेक्षा दूसरे की अवगाहना संख्यात गुण अधिक है।

स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित इस प्रकार समझना चाहिए- जैसे एक पृथ्वीकाय के जीव की स्थिति मुहूर्त्त के असंख्यातवें भाग कम बावीस हजार वर्ष की है और दूसरे की बावीस हजार वर्ष की है। यहाँ पहले की स्थिति असंख्यात भाग हीन है और उसकी अपेक्षा दूसरे की स्थिति असंख्यात भाग अधिक है। इसी तरह एक पृथ्वीकाय के जीव की स्थिति एक मुहूर्त्त कम बावीस हजार वर्ष की है और दूसरे पृथ्वीकाय के जीव की बावीस हजार वर्ष की है। एक मुहूर्त्त बावीस हजार वर्ष का संख्यातवाँ भाग है। अतः पहले जीव की स्थिति संख्यात भाग हीन और उसकी अपेक्षा दूसरे जीव की स्थिति संख्यात भाग अधिक है। इसी प्रकार एक पृथ्वीकाय के जीव की स्थिति एक हजार वर्ष की है और दूसरे पृथ्वीकाय के जीव की स्थिति बावीस हजार वर्ष की है। एक हजार से बावीस हजार बावीस गुणा यानी संख्यात गुण अधिक है। अतः पहले जीव की स्थिति संख्यात गुण हीन है और दूसरे जीव की स्थिति संख्यातगुण अधिक है।

चतु:स्थानपतित- चतु:स्थानपतित का आशय यहाँ असंख्यात भाग हीन, संख्यात भाग हीन, संख्यात गुण हीन, असंख्यात गुण हीन तथा असंख्यात भाग अधिक, संख्यात भाग अधिक, संख्यात गुण अधिक व असंख्यात गुण अधिक से है। ऊपर जो त्रिस्थानपतित बताया है उससे चतु:स्थानपतित में असंख्यात गुण हीन और असंख्यात गुण अधिक बढ़ा है। अतः यहाँ अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा असंख्यात गुण हीन और असंख्यात गुण अधिक का उदाहरण दिया जा रहा है। जैसे एक जीव की अवगाहना अँगुल के असंख्यातवें भाग की है और दूसरे की अवगाहना एक अँगुल की है। अँगुल के असंख्यातवें भाग से एक अँगुल असंख्यात गुणा है। अतः पहले जीव की अवगाहना असंख्यात गुण हीन है और दूसरे जीव की अवगाहना असंख्यात गुण अधिक समझनी चाहिए। जैसे एक जीव की स्थिति एक हजार वर्ष की है और

दूसरे की तीन पल्योपम की है। चूँकि असंख्यात वर्षों का एक पल्योपम होता है इसलिए एक हजार वर्ष से पल्योपम, असंख्यात गुण अधिक है अतः पहले जीव की स्थिति असंख्यात गुण हीन है और दूसरे की स्थिति असंख्यात गुण अधिक है। जिन जीवों की स्थिति में असंख्यात गुणा अन्तर होता है, उनकी स्थिति चतुःस्थानपतित समझनी चाहिए।

षट्स्थान- आगे वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के बीस बोलों के पर्याय की तथा दस उपयोग के पर्याय की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहेंगे। षट्स्थानपतित का आशय अनन्त भाग हीन, असंख्यात भाग हीन, संख्यात भाग हीन, संख्यातगुण हीन, असंख्यातगुण हीन, अनन्त गुण हीन और अनन्त भाग अधिक, असंख्यात भाग अधिक, संख्यात भाग अधिक, संख्यात गुण अधिक, असंख्यात गुण अधिक, अनन्त गुण अधिक से है। काले वर्ण की अनन्त पर्यायों को असद्भूत स्थापना से दस हजार माना जाय और सर्व जीवों की अनन्त संख्या को सौ मानकर उससे भाग दिया जाय तो भागफल सौ आयेगा। एक जीव के काले वर्ण की पर्याय दस हजार है और दूसरे जीव के काले वर्ण की पर्याय सौ कम यानी 9900 है। चूँकि सर्व जीवों की अनन्त संख्या से भाग देने से भागफल सौ आया है अतः यह सौ, अनन्तवाँ भाग है अतः 9900 काले वर्ण की पर्याय वाला दस हजार काले वर्ण की पर्याय वाले की अपेक्षा अनन्त भाग हीन है और दस हजार काले वर्ण की पर्याय वाला अनन्त भाग अधिक है।

इसी तरह काले वर्ण की पर्यायों को दस हजार माने और लोकाकाश प्रदेश प्रमाण असंख्यात संख्या को पचास मानलें। दस हजार में पचास का भाग देने पर भागफल 200 प्राप्त हुआ। यह दो सौ, असंख्यातवाँ भाग है। एक जीव की काले वर्ण की पर्याय 200 कम 9800 है और दूसरे जीव की दस हजार पर्याय है। पहले जीव की पर्याय दूसरे जीव की अपेक्षा असंख्यात भाग हीन है और दूसरे की पहले की अपेक्षा असंख्यात भाग अधिक है।

काले वर्ण की अनन्त पर्यायों को ऊपर लिखे अनुसार दस हजार मानलें और उत्कृष्ट संख्यात संख्या को दस मानलें। दस हजार में दस का भाग देने पर भागफल 1000 प्राप्त हुआ। यह एक हजार संख्यातवाँ भाग है। एक जीव की काले वर्ण की पर्याय एक हजार कम 9000 है और दूसरे की दस हजार है। अतः पहले जीव की काले वर्ण की पर्याय दूसरे की अपेक्षा संख्यात भाग हीन है और दूसरे की संख्यात भाग अधिक है।

ऊपर काले वर्ण की अनन्त पर्यायों को दस हजार माना है और उसमें सर्वजीव की अनन्त संख्या को सौ मान कर, लोकाकाश प्रदेश प्रमाण असंख्यात संख्या को पचास मान कर, उत्कृष्ट संख्यात को दस मान कर भाग दिया है और भागफल क्रमशः सौ, दो सौ और एक हजार आया है और सौ को अनन्तवाँ भाग, दो सौ को असंख्यातवाँ भाग और हजार को संख्यातवाँ भाग माना है। कल्पना करो एक जीव की काले वर्ण की पर्याय एक हजार है दूसरे की दस हजार है। हजार को दस से गुणा करने पर दस हजार आता है, इसलिए हजार पर्याय वाला संख्यात गुण हीन और दस हजार पर्याय वाला संख्यात गुण अधिक है। इसी तरह एक जीव की काले वर्ण की पर्याय दो सौ है और दूसरे की दस हजार है। दो सौ को पचास से गुणा करने पर दस हजार होते हैं अतः पहले जीव की पर्याय दूसरे की अपेक्षा असंख्यात गुण हीन है और दूसरे की असंख्यात गुण अधिक है। इसी प्रकार एक जीव की काले वर्ण की पर्याय सौ है और दूसरे की दस हजार है। सर्व जीवों की अनन्त संख्या को सौ माना है। सौ को सौ से गुणा करने पर दस हजार होते हैं। अतः सौ पर्याय वाला दस हजार पर्याय वाले की अपेक्षा अनन्त गुण हीन है और दस हजार पर्याय वाला अनन्त गुण अधिक है।

ज्ञातव्य– *जब दो समान जीवों की तुलना आपस में करते हैं तब उनकी स्थिति, अवगाहना आदि में यदि दुगुने से कम अन्तर होता है तो उसे संख्यात भाग हीन-अधिक ठाण (स्थान) कहते हैं। संख्यात-असंख्यात और अनन्त इन तीनों में आपस में अलग-अलग तुलना करने पर यदि दुगुने से कम अन्तर हो तो उसे विशेषाधिक भी कहते हैं।*

जब दो समान जीवों की आपस में तुलना करें और उनकी स्थिति, अवगाहना आदि में दुगुने से अधिक अन्तर होता है अर्थात् संख्यात गुण अधिक अन्तर होता है तो उसे संख्यात गुण हीन-अधिक ठाण कहते हैं।

जब दो समान जीवों की आपस में तुलना करें और उनकी स्थिति, अवगाहना आदि में असंख्यातवें भाग का ही अन्तर होता है तो उसे असंख्यात भाग-हीन-अधिक ठाण कहते हैं।

जब दो समान जीवों की आपस में तुलना करें और उनकी स्थिति, अवगाहना आदि में असंख्यात गुण अन्तर हो तो उसे असंख्यात गुण हीन-अधिक ठाण कहते हैं।

जब दो समान जीवों की आपस में तुलना करें और उनकी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि तथा मति, श्रुत आदि उपयोगों में अनन्त गुणा अन्तर होता है तो उसे अनन्त गुण-हीन अधिक ठाण कहते हैं। जब वर्णादि में तथा उपयोगों में अनन्तवें भाग का ही अन्तर हो तो अनन्तवाँ भाग हीन-अधिक ठाण कहलाता है।

पर्याय दो तरह की हैं- जीव पर्याय और अजीव पर्याय। जीव पर्याय संख्यात असंख्यात न हो कर अनन्त हैं। तेईस दंडक के जीव असंख्यात हैं, वनस्पति के जीव अनन्त हैं और सिद्ध भगवान अनन्त हैं।

सामान्य कथन- नारकी के नैरयिकों की पर्याय संख्यात और असंख्यात न हो कर अनन्त हैं। नारकी का एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित (चउट्ठाणवडिया) है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा एवं नौ उपयोग (3 ज्ञान 3 अज्ञान 3 दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित (छट्ठाणवडिया) है। नारकी की तरह देवता के तेरह दण्डक और तिर्यंच पंचेन्द्रिय का एक दण्डक-ये चौदह दण्डक कहने चाहिए, किन्तु ज्योतिषी और वैमानिक देवों में स्थिति त्रिस्थानपतित (तिट्ठाणवडिया) कहनी चाहिए।

***ज्ञातव्य-** प्रत्येक जीव की पर्याय, संख्यात असंख्यात न होकर अनन्त होती है, क्योंकि एक-एक जीव वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि की अपेक्षा तथा मति, श्रुत ज्ञान आदि दस उपयोगों (केवल ज्ञान, केवल दर्शन को छोड़कर) की अपेक्षा अनन्त गुणी हानि-वृद्धि (तरतमता) हो सकती है। 24 दण्डकों के सभी जीवों की पर्याय अनन्त-अनन्त होती हैं।*

इस जीव पज्जवा (पर्याय) के थोकड़े में द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा उपयोगों की अपेक्षा एक जीव की दूसरे जीव से तुलना की गई है। सभी बोलों में द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा तो तुल्य ही कहा गया है। इसका कारण यह है कि द्रव्य से- तात्पर्य जीवों की गिनती से है। जिनकी आपस में तुलना की जा रही है। अर्थात् जिस जीव की, दूसरे जिस जीव से तुलना की जा रही है, वे दोनों संख्या में एक-एक ही है अतः द्रव्य से तुल्य कहा गया है।

प्रदेश से तुल्य बतलाने का कारण यह है कि सभी जीवों के आत्म-प्रदेशों की संख्या बराबर ही होती है। अर्थात् सभी जीवों के आत्म-प्रदेश असंख्यात ही होते हैं। यद्यपि असंख्यात के असंख्यात भेद भी होते हैं, किन्तु आत्म-प्रदेशों की संख्या में एक प्रदेश का भी अन्तर नहीं होता, संख्या में एक समान ही होते हैं। जिस जीव की, दूसरे जिस जीव से तुलना की जा रही है, उन दोनों जीवों के आत्म-प्रदेश एक समान (तुल्य) ही होते हैं, अतः प्रदेश से भी तुल्य कहा गया है। जैसे हाथी और चींटी के आत्मप्रदेश एक समान होते हैं।

जीव पज्जवा के थोकड़े में स्थिति और अवगाहना की अपेक्षा भी जीवों की तुलना की जाती है। विशेषता यह है कि स्थिति, अवगाहना में अधिक से अधिक चतुःस्थानपतित (चउट्ठाणवडिया) ठाण बनता है, षट्स्थान का ठाण नहीं बनता। इसका कारण यह है कि किसी भी जीव की एक भव की स्थिति असंख्यात काल तक की होती है, उससे अधिक अर्थात् अनन्त काल की नहीं हो सकती। इसी प्रकार अवगाहना भी जीव की अधिकतम सम्पूर्ण लोकव्यापी (केवली समुद्घात की अपेक्षा) हो सकती है, उससे अधिक नहीं हो सकती, और वह भी असंख्यात गुणी है। इस कारण अवगाहना तथा स्थिति में असंख्यात गुणा ही अन्तर होता है, अनन्त गुणा अन्तर नहीं हो पाता। संख्यात की गणना में दुट्ठाण, असंख्यात की गणना में चउट्ठाण तथा अनन्त की गणना में छट्ठाण तक बन सकते हैं।

पृथ्वीकाय की पर्याय अनन्त हैं। एक पृथ्वीकाय दूसरे पृथ्वीकाय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि के बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा तथा तीन उपयोग (दो अज्ञान, एक दर्शन) की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। पृथ्वीकाय की तरह शेष चार स्थावर कहना चाहिए।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय इन तीन विकलेन्द्रिय की पर्याय भी अनन्त हैं। द्वीन्द्रिय-द्वीन्द्रिय से, त्रीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय से, चतुरिन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि के बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पाँच उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा और चतुरिन्द्रिय छह उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

मनुष्य की पर्याय अनन्त हैं। मनुष्य मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा तथा दस उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है तथा केवलज्ञान, केवलदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।

ज्ञातव्य- स्थिति जीवन पर्यन्त की होती है, जबकि अवगाहना वर्तमान समय की होती है। जघन्य स्थिति सबसे छोटे भव को कहा जाता है। नारकी, देवता में दस हजार वर्ष की तथा मनुष्य तिर्यंच में जो जीव अपर्याप्त अवस्था में जल्दी से जल्दी काल करते हैं, उनकी जघन्य स्थिति मानी जाती है। अपर्याप्त अवस्था में काल करने वाले एकान्त मिथ्यादृष्टि होते हैं। यही कारण है कि सामान्य मनुष्य-तिर्यंच में जघन्य स्थिति में ज्ञान का उपयोग नहीं माना जाता।

काले वर्णादि में जघन्य और उत्कृष्ट का स्थान एक ही होता है, उनमें न्यूनाधिकता संभव न होने से, उन-उन वर्णादि की अपेक्षा तुल्य कहा जाता हैं। मध्यम गुण में संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त गुणी हानि-वृद्धि संभव होने से षट्स्थानपतित कहा जाता है।

जिस जीव में जब ज्ञान होता है, तब अज्ञान नहीं होता। जब अज्ञान होता है तब ज्ञान नहीं होता। सम्यग्दृष्टि में ज्ञान होता है तथा मिथ्यादृष्टि व मिश्रदृष्टि में अज्ञान होता है। चक्षुदर्शनादि के साथ ज्ञान अथवा अज्ञान कोई भी हो सकता है।

इस थोकड़े में उत्पत्ति के प्रथम समय में भी चक्षुदर्शन माना है, क्योंकि तिर्यंच पंचेन्द्रिय में जघन्य अवगाहना में 6 उपयोग (2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन) की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहा है। उत्पत्ति के प्रथम समय में चक्षु दर्शन मानने का कारण यह है कि काय स्थिति (पद 18) के अधिकार में चक्षुदर्शन की कायस्थिति 1000 सागर झाझेरी कही गई। बाटे बहती अवस्था में भी लब्धि की अपेक्षा चक्षुदर्शन संभव है। सभी चौरेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों में जघन्य अवगाहना (उत्पत्ति के प्रथम समय में) में चक्षुदर्शन भी इसी अपेक्षा से माना गया है। इस थोकड़े में शक्ति की अपेक्षा चक्षुदर्शन उत्पत्ति के प्रथम समय में माना गया है, जबकि उपयोग द्वार के थोकड़े में चक्षुदर्शन की प्रवृत्ति नहीं होने से उत्पत्ति के प्रथम समय में चक्षुदर्शन नहीं माना है।

विशेष कथन (नैरयिकों की अपेक्षा)

जघन्य अवगाहना वाले नैरयिकों की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य अवगाहना वाला नैरयिक जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है तथा वर्णादि के बीस बोल तथा नौ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों की भी अनन्त पर्याय हैं। उत्कृष्ट अवगाहना वाला नैरयिक उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य, प्रदेश तथा अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा द्विस्थानपतित (दुट्ठाणवडिया) है, वर्णादि के बीस बोल तथा 9 उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। मध्यम अवगाहना वाला नैरयिक मध्यम अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है तथा वर्णादि के बीस बोल और 9 उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

ज्ञातव्य- नारकी में तथा भवनपति, वाणव्यन्तर देवों में जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट असंख्यात काल (पल्योपम, सागरोपम) होने से वहाँ भी स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहा गया है।

उत्कृष्ट अवगाहना (500 धनुष) वाले नैरयिक सातवीं नारकी में होते हैं। सातवीं नारकी में स्थिति जघन्य- 22 सागरोपम तथा उत्कृष्ट 33 सागरोपम की होती है। जघन्य-उत्कृष्ट इन दोनों स्थितियों में संख्यात भाग हीन-अधिक तथा असंख्यात भाग हीन-अधिक ये दो स्थान ही बन पाते हैं, इस कारण से स्थिति की अपेक्षा द्विस्थानपतित कहा गया है।

जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य स्थिति वाला नैरयिक जघन्य स्थिति वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि के बीस बोल तथा 9 उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिक भी इस तरह कहना। मध्यम स्थिति वाले नैरयिक भी इसी तरह कहना, किन्तु स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना।

जघन्य गुण काले वर्ण वाले नैरयिकों की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य गुण काले वर्ण वाला नैरयिक जघन्य गुण काले वर्ण वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष 19 वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा 9 उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाले नैरयिक भी इसी तरह कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाले नैरयिक भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि इनमें वर्णादि बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। जिस तरह काले वर्ण वाले नैरयिकों के बाबत कहा उसी तरह शेष 19 वर्णादि वाले नैरयिकों का भी कहना।

जघन्य मतिज्ञान वाले नैरयिकों की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य मतिज्ञान वाला नैरयिक जघन्य मतिज्ञान वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्णादि बीस बोल की पर्यायों तथा पाँच उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। मतिज्ञान की पर्याय की अपेक्षा तुल्य है। उत्कृष्ट मतिज्ञान वाले भी इसी तरह कहना। मध्यम मतिज्ञान वाले भी इसी तरह कहना। परन्तु इनमें छह उपयोग की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मतिज्ञान की तरह श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और तीन अज्ञान भी कहना। जिनमें ज्ञान हैं उनमें अज्ञान नहीं होते और जिनमें अज्ञान हैं उनमें ज्ञान नहीं होते।

जघन्य चक्षुदर्शन वाले नैरयिकों की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य चक्षुदर्शन वाला नैरयिक जघन्य चक्षुदर्शन वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा 8 उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, चक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। इसी तरह उत्कृष्ट चक्षुदर्शन वाले कहना। मध्यम चक्षुदर्शन वाले भी इसी तरह कहना। इनमें 9 ही उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। चक्षुदर्शन की तरह अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन भी कहना। इस तरह नारकी के अवगाहना, स्थिति, वर्णादि 20 बोल तथा 9 उपयोग, इन 31 के जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम की अपेक्षा 31x3=93 अलावा हुए।

नैरयिकों की तरह दस भवनपति देवों की पर्याय भी अनन्त हैं। द्रव्य, प्रदेश तथा जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना, स्थिति, वर्णादि 20 बोल तथा 9 उपयोग-सभी नैरयिकों की तरह कह देना चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि उत्कृष्ट अवगाहना में स्थिति द्विस्थानपतित न कह कर चतुःस्थानपतित कहना चाहिए। इस प्रकार भवनपति देवों के 93x10=930 अलावा हुए।

पृथ्वीकाय की अपेक्षा-

जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकाय की पर्याय भी अनन्त हैं। जघन्य अवगाहना वाला पृथ्वीकाय का जीव, जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकाय के जीव से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि बीस बोलों की पर्यायों की अपेक्षा तथा तीन उपयोग (दो अज्ञान, अचक्षुदर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले पृथ्वीकाय के जीवों का भी इसी प्रकार कहना। मध्यम अवगाहना वाले पृथ्वीकाय के जीवों के लिए भी इसी तरह कहना, सिर्फ अवगाहना चतुःस्थानपतित कहनी।

जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकाय के जीव जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकाय के जीव से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि 20 बोल की पर्याय तथा तीन उपयोग की पर्याय की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकाय के जीव भी इसी प्रकार कहना। मध्यम स्थिति वाले पृथ्वीकाय के जीव भी इसी प्रकार कहना। सिर्फ स्थिति त्रिस्थानपतित कहनी चाहिए।

ज्ञातव्य-पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय इन चार स्थावर जीवों की अवगाहना जघन्य तथा उत्कृष्ट दोनों की अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है। किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यात गुणी होती है। अंगुल के असंख्यातवें भाग के भी असंख्यात भेद होते हैं। इसी कारण अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहा जाता है।

पाँचों ही स्थावरों की स्थिति संख्यात काल की होती है, इस कारण से स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित ही कहा जाता है। जहाँ संख्यात काल से असंख्यात काल वाले जीवों की तुलना की जाती है, वहाँ स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित होता है।

जघन्य गुण काले वर्ण वाला पृथ्वीकाय का जीव जघन्य गुण काले वर्ण वाले पृथ्वीकाय के जीव से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्णादि 19 बोल तथा तीन उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाले पृथ्वीकाय के जीव भी कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाले पृथ्वीकाय के जीवों में वर्णादि बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना, शेष जघन्य गुण काले वर्ण की तरह कह देना चाहिए। काले वर्ण की तरह शेष 19 वर्णादि के बोल कहना चाहिए।

जघन्य मति अज्ञान वाला पृथ्वीकाय का जीव जघन्य मति अज्ञान वाले पृथ्वीकाय के जीव से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है और स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि 20 बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, मतिअज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, श्रुत अज्ञान और अचक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट मति अज्ञान वाले पृथ्वीकाय के जीव के लिए भी इसी तरह कहना। मध्यम मति अज्ञान वाले पृथ्वीकाय के जीव के लिए भी इसी तरह कहना चाहिए। अन्तर यह है कि इसमें तीनों उपयोगों की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मति अज्ञान वाले पृथ्वीकाय के जीव की तरह ही श्रुत अज्ञान और अचक्षुदर्शन वाले पृथ्वीकाय के जीवों के भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेद कर वर्णन करना चाहिए।

पृथ्वीकाय के अवगाहना, स्थिति, वर्णादि 20 बोल और 3 उपयोग इन 25 बोल के जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम की अपेक्षा 25x3=75 अलावा हुए। पृथ्वीकाय की तरह ही शेष चार स्थावर भी कहना चाहिए। इस तरह पाँच स्थावर के 5x75=375 अलावा हुए।

द्वीन्द्रिय की अपेक्षा-

जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य अवगाहना वाला द्वीन्द्रिय जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि 20 बोल की पर्यायों की अपेक्षा तथा पाँच उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान और अचक्षुदर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना, इतना अन्तर है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले में 3 उपयोग कहना। मध्यम अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर केवल इतना है कि इनमें अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना चाहिए।

ज्ञातव्य :- जघन्य अवगाहना उत्पत्ति के प्रथम समय में मानी जाती है। अर्थात् उत्पत्ति के प्रथम समय में जीव की जो अवगाहना होती है, उसे जघन्य अवगाहना कहते हैं। उत्पत्ति के दूसरे समय से मध्यम अवगाहना मानी जाती है। अपर्याप्त अवस्था में भी मध्यम अवगाहना होती है, यही कारण है कि बेइन्द्रियादि जीवों में मध्यम अवगाहना में सास्वादन सम्यक्त्व हो सकती है। इसलिए सास्वादन सम्यक्त्व वाले बेइन्द्रियादि जीवों में दो ज्ञान तथा मिथ्यादृष्टि जीवों में दो अज्ञान होते हैं।

जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, वर्णादि 20 बोल की पर्यायों तथा तीन उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। इसी तरह उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय भी कहना, अन्तर इतना है कि इनमें 5 उपयोग कहना। मध्यम स्थिति वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर इतना है कि इनमें स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहना तथा इनमें 5 उपयोग कहना।

ज्ञातव्य :- जिन बेइन्द्रियादि जीवों में सास्वादन सम्यक्त्व होती है, वे अपर्याप्त अवस्था में काल नहीं करते, अतः वे जघन्य स्थिति वाले न होकर मध्यम या उत्कृष्ट स्थिति वाले ही होते हैं।

जघन्य गुण काले वर्ण वाला द्वीन्द्रिय जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष 19 वर्णादि की पर्यायों तथा 5 उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर यह है कि इनमें वर्णादि 20 बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। काले वर्ण की तरह शेष 19 वर्णादि के बोल कह देना चाहिए।

जघन्य मतिज्ञान वाला द्वीन्द्रिय जघन्य मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि बीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, मतिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, श्रुतज्ञान और अचक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। जघन्य मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय की तरह उत्कृष्ट मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय भी कहना। मध्यम मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय भी जघन्य मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर इतना है कि तीनों उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय की तरह श्रुतज्ञान वाले द्वीन्द्रिय भी कहना। मतिज्ञान वाले, श्रुतज्ञान वाले द्वीन्द्रिय की तरह मति अज्ञान वाले, श्रुत अज्ञान वाले द्वीन्द्रिय भी कहना, सिर्फ ज्ञान की जगह अज्ञान कहना। अचक्षुदर्शन वाले द्वीन्द्रिय भी मतिज्ञान वाले द्वीन्द्रिय की तरह कहना। अन्तर इतना है कि जघन्य और उत्कृष्ट अचक्षुदर्शन वाले द्वीन्द्रिय अचक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है और दो ज्ञान, दो अज्ञान इन चार उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है तथा मध्यम अचक्षुदर्शन वाले पाँच उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

द्वीन्द्रिय के अवगाहना, स्थिति, वर्णादि के 20 तथा उपयोग 5 कुल 27 बोल के जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम की अपेक्षा 27x3=81 अलावा हुए। द्वीन्द्रिय की तरह त्रीन्द्रिय भी कहना। इनके भी 81 अलावा कहना। चतुरिन्द्रिय में चक्षुदर्शन अधिक है इसलिए 28 बोल हुए। जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम के भेद से 28x3=84 अलावा हुए। विकलेन्द्रिय के कुल 81+81+84=246 अलावा हुए।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा- तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अनन्त पर्याय हैं। जघन्य अवगाहना वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्णादि 20 बोल की पर्यायों की अपेक्षा और छह उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय में उपयोग 9 होते हैं, इन 9 उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, शेष जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय के समान कहना। मध्यम

अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय उत्कृष्ट अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह कहना, इतना अन्तर है कि अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना।

ज्ञातव्य– तिर्यंच पंचेन्द्रिय में जघन्य अवगाहना संख्यात वर्ष की आयु वालों की ही होती है, युगलिकों की नहीं। यद्यपि युगलिकों में भी उत्पत्ति के समय अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है, किन्तु युगलिकों में अंगुल का असंख्यातवाँ भाग सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय के उत्पत्ति–समय के अंगुल के असंख्यातवें भाग से बड़ा होता है, इस कारण जघन्य अवगाहना तिर्यंच युगलिकों में नहीं मानी है।

सामान्य तिर्यंचों में जघन्य अवगाहना उत्पत्ति के समय में होती है। उत्पत्ति के समय में तथा अपर्याप्त अवस्था में इनमें अवधिज्ञान अथवा विभंगज्ञान संभव नहीं है। पर्याप्त अवस्था में किसी–किसी को हो सकता है। युगलिकों में तो अवधिज्ञान तथा विभंगज्ञान होता ही नहीं है।

मध्यम अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय में आपस में तुलना करने पर स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहा गया है। क्योंकि मध्यम अवगाहना में संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी तिर्यंच तथा असंख्यात वर्ष की आयु युगलिक तिर्यंच दोनों का समावेश हो जाता है।

उत्कृष्ट अवगाहना तिर्यंचों में युगलिकों की न होकर संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी तिर्यंचों की होती है। क्योंकि युगलिकों की उत्कृष्ट अवगाहना 6 गाउ ही होती है। जबकि संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी तिर्यंच कर्मभूमिज की अवगाहना 1000 योजन की होती है। संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी तिर्यंचों में 3 ज्ञान, 3 अज्ञान तथा 3 दर्शन ये 9 उपयोग हो सकते हैं। अतः इन 9 उपयोगों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहा गया है।

जघन्य स्थिति वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय जघन्य स्थिति वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा और चार उपयोग (दो अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी जघन्य स्थिति वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर यह है कि इनमें छह उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान, दो दर्शन) कहना। मध्यम स्थिति वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी जघन्य स्थिति वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना तथा नव उपयोग कहना।

ज्ञातव्य– पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट तीन पल्योपम (युगलिकों की अपेक्षा से) की होती है। एक पल्योपम असंख्यात हजार वर्षों का होता है। अतः उसमें असंख्यात गुण हानि–वृद्धि संभव होने से स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहा गया है।

जघन्य गुण काले वर्ण वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय जघन्य गुण काले वर्ण वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्णादि उन्नीस बोल की पर्यायों की अपेक्षा तथा 9 उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी जघन्य गुण काले वर्ण वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह कहना। इसी तरह मध्यम गुण काले वर्ण वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी कहना, अन्तर इतना है कि इनमें बीस वर्णादि की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। काले वर्ण वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह शेष 19 वर्णादि वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय कहना।

जघन्य मतिज्ञान वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय जघन्य मतिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, वर्णादि 20 बोल की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, मतिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, तीन उपयोग (श्रुतज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। जघन्य मतिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह उत्कृष्ट मतिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय कहना, अन्तर इतना है कि उत्कृष्ट मतिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहना तथा उत्कृष्ट मतिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य और शेष 5 उपयोग (श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और तीन दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मध्यम मतिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी जघन्य मतिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह कहना, इतना अन्तर है कि इनमें छह उपयोग की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मतिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह ही श्रुतज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय कहना। मतिज्ञान की जगह श्रुतज्ञान कहना।

ज्ञातव्य– जघन्य मतिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय को अवधिज्ञान नहीं होता, इसी कारण जघन्य मतिज्ञान में 3 उपयोग (श्रुतज्ञान, चक्षु–अचक्षु दर्शन) की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहा गया है।

उत्कृष्ट मतिज्ञान, श्रुतज्ञान में स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहा है। उसका कारण यह है कि युगलिकों में उत्कृष्ट उपयोग नहीं पाया जाता है।

जघन्य अवधिज्ञान वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय जघन्य अवधिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, पाँच उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवधिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। जघन्य अवधिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह उत्कृष्ट अवधिज्ञान वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय कहना। मध्यम अवधिज्ञान वाले भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि इनमें छह उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी की तरह मतिअज्ञानी, श्रुत अज्ञानी कहना। अवधिज्ञान की तरह विभंगज्ञान कहना।

जघन्य चक्षुदर्शन वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय जघन्य चक्षुदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा पाँच उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, चक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। जघन्य चक्षुदर्शन वाले की तरह उत्कृष्ट चक्षुदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी कहना, अन्तर इतना है कि उत्कृष्ट चक्षुदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय में स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित व आठ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मध्यम चक्षुदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी जघन्य चक्षुदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह कहना, अन्तर इतना है कि इनमें 9 उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। चक्षुदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह अचक्षुदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी कहना।

जघन्य अवधिदर्शन वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय जघन्य अवधिदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा और आठ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, अवधिदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। जघन्य अवधिदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की तरह उत्कृष्ट अवधिदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी कहना। मध्यम अवधिदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी इसी तरह कहना, इतना अन्तर है कि मध्यम अवधिदर्शन वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय में नौ उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना।

इस तरह अवगाहना, स्थिति, वर्णादि के बीस बोल और 9 उपयोग, इन 31 बोल के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम के भेद से 31X3=93 अलावा हुए।

मनुष्य की अपेक्षा-

मनुष्य की अनन्त पर्याय कह गई हैं। जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य जघन्य अवगाहना वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा आठ उपयोग (3 ज्ञान 2 अज्ञान और 3 दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा एकस्थानपतित कहना तथा 6 उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान, दो दर्शन) कहना। मध्यम अवगाहना वाला मनुष्य मध्यम अवगाहना वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा दस उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान-केवलदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।

ज्ञातव्य- *मध्यम अवगाहना वाले मनुष्यों की आपस में तुलना करने पर स्थिति व अवगाहना दोनों की अपेक्षा चतुःस्थानपतित होता है। क्योंकि मध्यम अवगाहना वाले मनुष्यों में संख्यात वर्ष की आयु वाले सामान्य मनुष्य तथा असंख्यात वर्ष की आयु वाले युगलिक मनुष्य दोनों का समावेश होता है। मध्यम अवगाहना वाले में संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी मनुष्यों की अपेक्षा 4 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन इन 10 उपयोग की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहा गया है।*

उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों में स्थिति की अपेक्षा एकस्थानपतित कहा है। उत्कृष्ट अवगाहना मनुष्यों में युगलिकों की अपेक्षा 3 गाउ की होती है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले युगलिक मनुष्यों की स्थिति तीन पल्योपम की होती है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों की स्थिति में असंख्यात भाग-हीनाधिक का ही स्थान बनता है। यद्यपि असंख्यात भाग-हीनाधिक में संख्यात वर्षों का भी अन्तर हो सकता है, किन्तु यहाँ अन्तर्मुहूर्त का ही अन्तर समझना चाहिए।

जघन्य स्थिति वाला मनुष्य, जघन्य स्थिति वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा तुल्य है, बीस वर्णादि की पर्यायों तथा चार उपयोग (दो अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। उत्कृष्ट स्थिति वाला मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर यह है कि छह उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मध्यम स्थिति वाला

मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना तथा दस उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना और केवलज्ञान-केवलदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य कहना।

जघन्य गुण काले वर्ण वाला मनुष्य, जघन्य गुण काले वर्ण वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष 19 वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा दस उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान-केवलदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। जघन्य गुण काले वर्ण वाले मनुष्य की तरह उत्कृष्ट गुण काले वर्ण वाला मनुष्य भी कहना। मध्यम गुण काले वर्ण वाला मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर इतना है कि बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। काले वर्ण की तरह शेष 19 वर्णादि कहना।

जघन्य मतिज्ञान वाला मनुष्य जघन्य मतिज्ञान वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है। बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, मतिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, तीन उपयोग (श्रुतज्ञान और दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। जघन्य मतिज्ञान वाले मनुष्य की तरह उत्कृष्ट मतिज्ञान वाला मनुष्य कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहना, तीन ज्ञान और तीन दर्शन, इन छह उपयोग की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मध्यम मतिज्ञान वाला मनुष्य भी उत्कृष्ट मतिज्ञान वाले मनुष्य की तरह कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना, सात उपयोग (चार ज्ञान, तीन दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। मतिज्ञान की तरह श्रुतज्ञान कह देना।

जघन्य अवधिज्ञान वाला मनुष्य जघन्य अवधिज्ञान वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, 6 उपयोग (तीन ज्ञान, तीन दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। अवधिज्ञान की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। उत्कृष्ट अवधिज्ञान वाला मनुष्य भी जघन्य अवधिज्ञान वाले मनुष्य की तरह कहना। मध्यम अवधिज्ञान वाला मनुष्य भी इसी तरह कहना, अन्तर यह है कि अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहना और 7 उपयोग (4 ज्ञान, 3 दर्शन) की पर्याय की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। अवधिज्ञान की तरह मनःपर्यवज्ञान भी कहना, अन्तर इतना है कि मध्यम मनःपर्यायज्ञान वाले मनुष्य में अवगाहना त्रिस्थानपतित कहना।

ज्ञातव्य- *संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी मनुष्यों में जघन्य अवगाहना में दो अथवा तीन ज्ञान हो सकते हैं, किन्तु अज्ञान दो ही होते हैं। क्योंकि कोई तीर्थंकर बनने वाला जीव अथवा वैमानिक देव अवधिज्ञान के साथ मनुष्य भव में उत्पन्न होता है तब उसमें जघन्य अवगाहना में 3 ज्ञान होते हैं। यदि कोई सम्यग्दृष्टिपने में बिना अवधिज्ञान के उत्पन्न होता है तो उसमें 2 ज्ञान तथा मिथ्यादृष्टिपने में मनुष्य में उत्पन्न होता है तो 2 अज्ञान जघन्य अवगाहना में होते हैं।*

उत्कृष्ट मतिज्ञान व उत्कृष्ट श्रुतज्ञान संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्यों में पर्याप्त अवस्था में चारित्रवान को होता है। अन्य मनुष्यों में जघन्य व मध्यम रहता है। यही कारण है कि मनुष्यों में उत्कृष्ट मति व उत्कृष्ट श्रुतज्ञान स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित बतलाया है। युगलिक मनुष्यों में उत्कृष्ट मति व उत्कृष्ट श्रुतज्ञान नहीं होता है।

उत्कृष्ट मतिज्ञान व उत्कृष्ट श्रुतज्ञान चारित्रवान मनुष्यों को होने पर भी उनमें अवगाहना चतुस्थानपतित बतलायी है। इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट मतिज्ञानी व उत्कृष्ट श्रुतज्ञानी जब मारणान्तिक समुद्घात करते हैं तो उनकी अवगाहना असंख्यात योजन तक की हो जाती है। अतः चारित्रवान साधु की पृथक्त्व हाथ अवगाहना से मारणान्तिक समुद्घात वाली असंख्यात योजन की अवगाहना की तुलना करने पर अवगाहना चतुस्थानपतित हो जाती है।

इससे यह फलित होता है कि चारित्रवान मनुष्यों में उत्कृष्ट मति-श्रुतज्ञान होने पर भी उनका उसी भव में मोक्ष प्राप्त करना अनिवार्य नहीं है। इसी कारण से उत्कृष्ट मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वाले मनुष्यों में भी मारणान्तिक समुद्घात माना गया है। उत्कृष्ट अवधिज्ञान-परमावधि ज्ञान प्राप्त होने पर अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त होने की नियमा है।

मनुष्य भव में जो अवधिज्ञान लेकर उत्पन्न होते हैं, वह अवधिज्ञान जघन्य न होकर मध्यम होता है। यही कारण है कि मध्यम अवधिज्ञान वाले मनुष्यों में तुलना करने पर अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित कहा गया है। जघन्य अवधिज्ञान मनुष्यों में पर्याप्त अवस्था में होता है तथा उत्कृष्ट अवधिज्ञान भाव से चारित्रवान मनुष्य को होता है, इसी कारण जघन्य व उत्कृष्ट अवधिज्ञान की अपेक्षा मनुष्य की अवगाहना त्रिस्थानपतित ही होती है।

युगलिक मनुष्यों में अवधिज्ञान नहीं हो पाता। संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में ही किसी-किसी को होता है। इस कारण से स्थिति की अपेक्षा उन्हें (मनुष्यों को) चतुःस्थानपतित न कहकर त्रिस्थानपतित कहा गया है। तिर्यंच युगलिकों के समान मनुष्य युगलिकों में भी उत्पत्ति के समय जघन्य अवगाहना नहीं होती। युगलिक मनुष्यों में मध्यम व उत्कृष्ट अवगाहना होती हैं। मनुष्यों में प्रायः स्थिति के अनुपात में अवगाहना बढ़ती है। अर्थात् जिन मनुष्यों की स्थिति एक क्रोड़ पूर्व वर्ष की होती है, उनकी उत्कृष्ट अवगाहना 500 धनुष की, जिनकी स्थिति पल्योपम का आठवाँ भाग की होती है, उनकी 800 धनुष झाझेरी की, जिनकी स्थिति तीन पल्योपम की होती है, उनकी उत्कृष्ट अवगाहना तीन गाउ की होती है।

तिर्यंचों में स्थिति के अनुपात में अवगाहना होना अनिवार्य नहीं है। तिर्यंचों में तो एक क्रोड़ पूर्व वर्ष तक की आयु वालों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर 1000 योजन तक की हो सकती हैं। युगलिक तिर्यंचों में 3 पल्योपम तक की स्थिति होने पर भी अवगाहना पृथक्त्व धनुष से लेकर 6 गाउ तक की हो सकती है।

मनःपर्यायज्ञान चारित्रवान (संयमी मनुष्य) को ही होता है। चारित्रवान मनुष्य संख्यात वर्ष की आयु वाले ही होते हैं। चारित्र लगभग 9 वर्ष की उम्र के बाद ही ग्रहण किया जा सकता हैं। चारित्र की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट देशोन क्रोड़ पूर्व की होती है। इस कारण से मनःपर्यायज्ञानी को स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहा गया है। मनःपर्याय ज्ञानी की अवगाहना त्रिस्थानपतित ही बतलाई है, इससे सिद्ध होता है कि वह मारणान्तिक समुद्घात नहीं करता। यदि मारणान्तिक समुद्घात करता तो उसकी अवगाहना चतुस्थानपतित हो जाती।

केवलज्ञानी मनुष्य केवलज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान-केवलदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।

मतिज्ञान की तरह मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान कहना। अवधिज्ञान की तरह विभंगज्ञान कहना।

ज्ञातव्य- केवलज्ञानी मनुष्य की अवगाहना केवली समुद्घात की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित कही गयी है। जब कोई केवली केवली समुद्घात करते हैं तब चौथे समय में उनके आत्मप्रदेश सम्पूर्ण लोक में फैल जाते हैं। इस प्रकार एक समय के लिए केवली की अवगाहना असंख्यात गुणी अधिक हो जाती है।

केवली पर्याय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट देशोन क्रोड़ पूर्व की होती है। दोनों ही स्थिति संख्यात काल की होने से स्थिति की अपेक्षा केवली मनुष्य को त्रिस्थानपतित कहा गया है।

जिस प्रकार से जघन्य और उत्कृष्ट अवधि ज्ञानी मनुष्य को अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहा है, उसी प्रकार जघन्य व उत्कृष्ट विभंगज्ञानी मनुष्य में भी अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थान पतित ही कहना चाहिए। इससे यह स्पष्ट होता है कि जघन्य तथा उत्कृष्ट विभंग ज्ञान वाले मनुष्यों में मारणान्तिक समुद्घात नहीं होता है। यदि मारणान्तिक समुद्घात होता तो अवगाहना चतुस्थान पतित हो जाती।

मध्यम श्रेणि का विभंग ज्ञान मनुष्यों में पर्याप्त अवस्था में ही होता है। इनमें अवगाहना की अपेक्षा मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्य के समान चतुस्थान पतित समझना चाहिए। किन्तु चतुस्थान पतित अवगाहना मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यों में मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा से समझनी चाहिए।

जघन्य चक्षुदर्शन वाला मनुष्य, जघन्य चक्षुदर्शन वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा तथा पाँच उपयोग (दो ज्ञान, दो अज्ञान, अचक्षुदर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है। चक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। इसी तरह उत्कृष्ट चक्षुदर्शन वाला मनुष्य कह देना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहना और 9 उपयोग (चार ज्ञान, तीन अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना और चक्षुदर्शन की अपेक्षा तुल्य कहना। मध्यम चक्षुदर्शन वाला मनुष्य भी उत्कृष्ट चक्षुदर्शन वाले मनुष्य की तरह कहना, अन्तर इतना है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित और दस उपयोग (चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। चक्षुदर्शन की तरह ही अचक्षुदर्शन कहना।

जघन्य अवधिदर्शन वाला मनुष्य, जघन्य अवधिदर्शन वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, बीस वर्णादि की पर्यायों की अपेक्षा और 9 उपयोग (चार ज्ञान, तीन अज्ञान, दो दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है तथा अवधिदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है। इसी तरह उत्कृष्ट अवधिदर्शन वाला मनुष्य कहना। मध्यम अवधिदर्शन वाला मनुष्य भी इसी

तरह कहना, अन्तर इतना है कि इसमें अवगाहना की अपेक्षा चतु:स्थानपतित कहना और दस उपयोग (चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन) की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना। केवलज्ञान की तरह केवलदर्शन कहना।

ज्ञातव्य – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान के जघन्य उपयोग वाले मनुष्यों में अवधिज्ञान, विभंगज्ञान तथा अवधिदर्शन नहीं होते हैं।

इस थोकड़े में यद्यपि सभी दण्डकों में मिलने वाले जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट उपयोगों का कथन किया गया है। तथापि उत्कृष्ट उपयोग का यह कथन उस-उस दण्डक के जीवों की अपेक्षा से ही समझना चाहिए। अन्यथा तो सभी संसारी जीवों को मिलाकर कथन करें तो सभी उत्कृष्ट उपयोग संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्तकों में ही मिलते हैं। उनमें भी पाँच ज्ञान व चार दर्शन ये नव उपयोग तो उत्कृष्ट रूप से चारित्रवान संयमी मनुष्य में ही मिलते हैं।

इस प्रकार मनुष्य के अवगाहना, स्थिति, बीस वर्णादि और दस उपयोग, इन 32 बोल के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम के भेद से 32x3=96 तथा केवलज्ञान-केवलदर्शन के दो, इस प्रकार कुल 98 अलावा हुए।

व्यन्तर, ज्योतिषी व वैमानिक की अपेक्षा-

व्यंतर, असुरकुमार की तरह कहना चाहिए। ज्योतिषी भी असुरकुमार की तरह कहना चाहिए, अन्तर यह है कि इनमें स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहना चाहिए। वैमानिक, ज्योतिषी की तरह कहना चाहिए। लेकिन इनमें उत्कृष्ट स्थिति वाले वैमानिक देव, उत्कृष्ट स्थिति वाले वैमानिक देव से 6 उपयोग (तीन ज्ञान, तीन दर्शन) की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहना चाहिए।

ज्ञातव्य-ज्योतिषी व वैमानिक देवों में जघन्य तथा उत्कृष्ट दोनों ही स्थिति असंख्यात काल की होती है। अतः उनमें आपस में तुलना करने पर स्थिति की अपेक्षा असंख्यात गुणी हानि-वृद्धि संभव नहीं हो पाती। यही कारण है कि इनमें स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित ही कहा गया है।

यद्यपि ज्योतिषी व वैमानिक देवों में आपस में तुलना करने पर स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित बनता है, किन्तु वैमानिक देवों में पाँचवें देवलोक व उससे ऊपर के देवों में आपस में तुलना करने पर स्थिति की अपेक्षा द्विस्थानपतित (संख्यात भाग हीनाधिक, असंख्यात भाग हीनाधिक) ही बनता है। उत्कृष्ट स्थिति पाँच अनुत्तर विमान के देवों की होती है। ये एकान्त सम्यग्दृष्टि होते हैं, अतः 3 ज्ञान, 3 दर्शन इन 6 उपयोगों की अपेक्षा षट्स्थानपतित कहा गया है।

नैरयिक की तरह व्यंतर के 93, ज्योतिषी के 93 और वैमानिक के 93 अलावा होते हैं।

समुच्चय के 24, नरक के 93, देवता के तेरह दण्डक के 93x13=1209, तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 93, पाँच स्थावर के 375, विकलेन्द्रिय के 246 और मनुष्य के 98, इस प्रकार कुल 24+93+1209+93+375+ 246+98=2138 अलावा हुए।

।। जीव पज्जवा का थोकड़ा समाप्त ।।

निबन्ध विभाग–

जैन दर्शन की विशेषताएँ

जैन दर्शन व्यापक और विशाल दर्शन है, जो दिव्य दृष्टि से उत्पन्न हुआ है। दिव्य दृष्टि का अर्थ है– अतीन्द्रिय ज्ञान। दिव्य दृष्टि से उत्पन्न दर्शन ही वास्तविक और सही दर्शन है। वह कोई व्यक्ति, जाति, वर्ग और संप्रदाय विशेष से बंधा हुआ नही है। जिसने कषाय चतुष्क का आत्यन्तिक क्षय कर घातिकर्मों का क्षय किया है, वही सर्वज्ञ है और उन सर्वज्ञों की सारमयी और कल्याणकारी वाणी से ही जैन दर्शन बनता है। जिनेन्द्र भगवन्तों द्वारा प्ररूपित मोक्ष का स्वरूप व उस मोक्षमार्ग को प्राप्त कर चलने वालों का आचार और उसकी मान्यताएँ– इन सबका सामूहिक दिग्दर्शन जैन दर्शन में है।

जैन दर्शन एक आत्मवादी दर्शन है। उसके अनुसार जीवन का परम लक्ष्य आत्म–मुक्ति है और उसके साधन हैं– सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र व सम्यग्तप। इन चारों की समन्वित साधना से आत्मा कर्मो से मुक्त बनती है।

जैन दर्शन की मौलिक विशेषता है कि उसने हर व्यक्ति को परमात्मा बनने की स्वतंत्रता दी। जैन दर्शन में सबसे अधिक महत्त्व आत्मा को दिया है। "अप्पा कत्ता विकत्ता य" अर्थात् आत्मा स्वयं अपने कर्म का कर्त्ता है और भोक्ता है। कर्म न तो किसी दूसरे के द्वारा निर्माण हुए और न वे किसी दूसरे के कर्मो का निर्माण कर सकते हैं। आत्मा स्वयं अच्छे बुरे कर्म करती है, स्वयं ही कृत कर्मों का फल भोगती है, स्वयं ही संसार में परिभ्रमण करती है और स्वयं ही मुक्त होती है। "अप्पा सो परमप्पा" आत्मा ही परमात्मा है।

आत्मा परमात्मा में, कर्म ही का भेद है।
काट दे यदि कर्म तो, भेद है ना खेद है।

जिस तार्किक शैली के आधार पर जैन–दर्शन ने आत्मा, ईश्वर, लोक, अलोक, नित्य–अनित्य, सत्–असत्, ज्ञान, कर्म, बंध, मोक्ष आदि तत्त्वों का सूक्ष्मता व स्पष्टता से विवेचन–विश्लेषण किया है वह अद्‌भुत एवं मननीय है। जैन–दर्शन के सिद्धान्त अत्यन्त विशद है और आचार क्रिया बहुत व्यापक है। इसमें मनुष्य मात्र के आत्म–विकास व आत्मकल्याण का द्वार खोल दिया है। यहाँ व्यक्ति, जाति, वर्ग की गरिमा नही, आचार की गरिमा है, कहा भी है–

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥उत्तरा.25/33

कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से शूद्र होता है। तात्पर्य यह है कि आजीविका के भेद से ही वर्णों में भेद होता है। जिन लोगों ने जन्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था की कल्पना की है, उनका प्रकारान्तर से यहाँ विरोध किया गया है।

जैन दर्शन की मान्यता है "नो हीणे, नो अइरित्ते, तम्हा पंडिए नो हरिसे नो कुप्पे" (आचारांग) कोई हीन नही है और न कोई अतिरिक्त है इसलिए जाति के आधार पर न कोई अभिमान करें और न कोई अपने को नीचा समझें। इस तरह जैन दर्शन ने आचार को सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

जैन दर्शन में आत्म–साम्य का सिद्धान्त है। दशवै. सूत्र में कहा गया है कि–

सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइ पासओ ।
पिहिआसवस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधइ ॥4/9

जो समस्त त्रस स्थावर जीवों को अपने समान समझता है और यह मानता है कि जैसे मेरे पैर में कांटा लगने से वेदना होती है, वैसे अन्य जीवों को भी पीड़ा होती है। इस प्रकार जीव मात्र को आत्मवत् देखता है, फिर आश्रव द्वार को रोकता है वह जितेन्द्रिय आत्मा पाप कर्म का बंध नही करता।

'अत्तसमे मण्णिज्ज छप्पिकाए' (दशवै. 10/5) जो छः काय के जीवों को आत्मवत् समझता है। 'मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ ण केणइ' जहाँ एक जीव पर भी वैर उपादेय नहीं। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जो सभी आत्मा अपने समान है' इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं।

जीव आत्म द्रव्य की अपेक्षा एक है। सभी की आत्मा पृथक्–पृथक् एक–एक है, किन्तु प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यात है। भाव की अपेक्षा अनन्त ज्ञान सम्पन्न हैं।

जैन–दर्शन की अनेक विशेषताओं में आत्म–कर्तृत्व, अनेकान्तवाद, अहिंसा, अपरिग्रहवाद, कर्मवाद, समाधिमरण, ये अद्वितीय हैं। अध्यात्म पर जितना मनोमन्थन एवं परिशीलन यहाँ हुआ है संभवतः अन्य किसी दूसरे दर्शन में नही हुआ है। **सभी द्रव्य शाश्वत है, गुण–पर्याय परिवर्तनशील है**– जैन शास्त्रों में कुल छः ही द्रव्य है।

धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो ।
एस लोगोत्ति पन्नतो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ (उत्तरा. 28/7)

प्रत्यक्षदर्शी जिनवरों ने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय यह षड्द्रव्यात्मक लोक कहा है। ये छः ही द्रव्य कभी न्यूनाधिक नहीं होते, क्योंकि ये नित्य और अवस्थित हैं। ना बनाये जा सकते हैं ना मिटाये जा सकते हैं।

द्रवति पर्यायात् पर्यायन्तरम् गच्छति इति द्रव्यम्– एक पर्याय से दूसरी पर्याय में जानेवाला द्रव्य कहलाता है।

छः ही द्रव्य अपने–अपने स्वभाव में स्थित हैं। लोक का कोई बनाने वाला नहीं। जगत् का कर्त्ता कोई नहीं। जो बनता है वह बिगड़ता है। वस्तु बनाई जाती है नष्ट हो जाती है। आत्मा कोई वस्तु नहीं, क्योंकि आत्मा बनाई नहीं जाती। अर्थात् इस लोक को किसी ने बनाया नहीं। जब लोक को किसी ने बनाया नहीं तो उसके कर्त्ता–बनाने वाले का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ ईश्वर–कर्तृत्व का खण्डन हो जाता है, क्योंकि सृष्टिकर्त्ता मानने वाले को ईश्वर का अस्तित्व सृष्टि से पहले तो मानना ही पड़ेगा। यदि यह मान लिया तो ऐसी स्थिति आकाश के बिना नहीं हो सकती। जब जगत् के बनाने वाले ईश्वर से पहले षट्द्रव्यमय जगत् सिद्ध ही है तो फिर ईश्वर ने क्या बनाया है? ईश्वर में सर्वसामर्थ्य है तो दयालुता के कारण बढ़िया से बढ़िया परम सुखी जगत् बनाता। वह दु:खों का भण्डार संसार कदापि न बनाता। अधर्मी, पापी जीवों की सृष्टि कभी न करता। पर सच यह है कि इसमें ईश्वर का कोई हाथ नहीं। जीव, कर्म और वस्तुओं के विविध स्वभावों के कारण ये नये–नये परिवर्तन होते रहते हैं। फेरफार, रूपान्तर, अवस्थान्तर लोक की पर्यायें हैं। पर्यायों में हानि–वृद्धि, चय–उपचय होता है। सभी द्रव्य शाश्वत है, नित्य है। पर्याय परिवर्तनशील है।

आत्मकर्त्तृत्व :

जो आत्मा है वही विज्ञाता है, जो विज्ञाता है वही आत्मा है। आत्मा ही पदार्थों को जानता है, इन्द्रियाँ नही। जैन दर्शन का उद्घोष है– 'ज्ञान–दर्शन स्वरूप मैं आत्मा हूँ। अन्य सभी राग–द्वेष, मोह आदि द्रव्य कर्म, शरीर आदि संयोगी पदार्थ हैं। वह मैं नहीं, मेरा स्वरूप नहीं, निश्चय में मेरे नहीं। मैं तो शाश्वत अजर, अमर

अविनाशी, अमूर्त चैतन्यमय प्रकट आत्मा हूँ। कर्म, शरीर आदि संयोगी पदार्थ पौद्गलिक हैं। उनका अस्तित्व भिन्न है। वह स्वतंत्र पुद्गल द्रव्य की पर्याय है।

आत्मा अमूर्त है, उपयोगमय चैतन्य स्वरूप है, अखण्ड है, अनन्त गुण–पर्यायों से युक्त अभेद स्वरूप है। असंख्यात प्रदेशी है। आत्मा के लक्षण ज्ञान–दर्शन–चारित्र, सुख, वीर्य, कर्त्ता भोक्ता आदि हैं। आत्मा देह परिमाण रहता है। उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य की त्रिपदी से युक्त है। आत्मा अनुत्पन्न है, अजर–अमर अविनाशी है। कर्म सहित होने पर भी कर्म रूप नहीं, जड़ स्वरूप नहीं। आत्मा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श से रहित है।

पुरिसा तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि? आचा.3/3

अप्पा कत्ता विकत्ता य– उत्तरा.20/37

आत्मा ही सुख–दु:ख का जनक है और आत्मा ही उनका विनाशक है। सदाचारी सन्मार्ग पर लगा हुआ आत्मा अपना मित्र है और कुमार्ग पर लगा हुआ दुराचारी आत्मा ही अपना शत्रु है। आत्मा की शुभ अशुभ परिणति ही सुख–दु:ख का कारण होती है। जैसे मेघ पटल के हट जाने पर सूर्य प्रकाशित हो जाता है, वैसे ही राग–द्वेष– मोह व कर्म–पटल के हटने पर ज्ञान दर्शनादि आत्म शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं। रत्नत्रय के द्वारा ही यह आवरण दूर होता है। मोक्षमार्ग अंतर में ही है। आत्मकर्तृत्व का सिद्धान्त संसार के समग्र प्राणियों के लिए एक वरदान स्वरूप है। इसके स्वरूप को पहचानकर तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति भी अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है।

अनेकान्तवाद :

अनेकान्तवाद जैन दर्शन की आधारशिला है। जैन तत्त्वज्ञान का महल, इसी अनेकान्त सिद्धान्त की सुदृढ़ नींव पर खड़ा है। जैन दर्शन प्रत्येक वस्तु को अनन्त धर्मात्मक मानता है। प्रत्येक पदार्थ चाहे वह छोटा–सा रज कण हो, चाहे महान् हिमालय, अनन्त धर्मों का समूह है। धर्म का अर्थ गुण है, विशेषता है। हमारी बुद्धि बहुत सीमित है, अतः हम वस्तु के सब अनन्त धर्मो को बिना अनन्त ज्ञान हुए नहीं जान सकते। परन्तु स्पष्टतः प्रतीत होने वाले बहुत से धर्मों को तो अपने बुद्धि बल के अनुसार जान ही सकते हैं। अनेकान्तवाद हमारे दृष्टिकोण को विस्तृत करता है, हमारी विचारधारा को पूर्णता की ओर ले जाता है।

अनेकान्त आग्रहमुक्त, उदार, विचारधारा का स्रोत है। समन्वयवादी दृष्टिकोण का प्रतीक एवं परिपोषक है। यह खुले दिमाग से हर तथ्य पर चिन्तन–मन्थन करने का द्वार है। सत्य का सर्वांगीण परिचय पाने का सक्षम माध्यम है। इसके बिना विराट् सत्य की उपलब्धि नहीं हो सकती। अनेकान्त दर्शन से चिन्तन–पद्धति परिष्कृत बनती है। व्यवहार में मधुरता एवं शुद्धता का विकास होता है। बुद्धि निर्मल बनती है। विश्व के विराट् ज्ञान की सूक्ष्म पहचान मिलती है। अनेकान्त के बिना विश्व में सत्य की गुत्थियाँ कदापि नहीं सुलझ सकती।

अनेकान्त की परिभाषा करते हुए एक जैनाचार्य ने लिखा है– अनेकान्त– अनेक अन्ताः भावाः अर्थाः समान्य विशेष गुणपर्यायः, यस्य सोऽनेकान्तः – अर्थात् जिसमें अनेक अर्थ, भाव, सामान्य–विशेष गुण पर्याय रूप से पाये जायें, वह अनेकान्त है।

जैन दर्शन की मान्यतानुसार संसार में अनन्त जीव हैं। अनन्त स्वभाव के हैं, अनन्त वस्तुएँ हैं, उनके अनन्त पर्याय हैं अनन्त परमाणु हैं, अनन्त उनके परिणमन हैं, अगणित शब्द हैं और अनगिनत उनके अर्थ हैं।

भगवान महावीर ने भारतीय दर्शन के मौलिक तत्त्व लोक, आत्मा, मुक्ति, शरीर, पदार्थ, पुद्गल और परमाणु आदि सभी का प्ररूपण अनेकान्त शैली में किया है। पदार्थो के विभिन्न धर्मों पर, गुणों पर भिन्न–भिन्न अपेक्षा से दृष्टिपात करते हुए, उन्होंने उनके विराट् स्वरूप को प्रस्तुत किया है। भगवान महावीर ने

कहा कि वस्तु का एक धर्म ही सत्य नही है। दूसरे दृष्टिकोण से वस्तु का दूसरा धर्म भी उतना ही सत्य है जितना प्रथम। यों विभिन्न अपेक्षाओं से वस्तु अनन्त धर्म वाली सिद्ध होती है।

पंथों का झूठा झगड़ा, जनता का मानस बिगड़ा,
भेद सहिष्णुता की, रक्खी सच्चाई तूने,
वीर जिनेश्वर सोइ, दुनियाँ जगाई तूने।

अनेकान्तवाद का फलित यह है कि इससे सम्यग्ज्ञान होता है। मनुष्य में आग्रह बुद्धि नहीं आती। उसका चिन्तन हर तथ्य के विषय में उदार और व्यापक होता है। अपेक्षावाद से समन्वय करते हुए वह हर जगह तनाव को समाप्त कर देता है। अनेकान्तवाद वस्तु के सर्वांगीण ज्ञान का द्वार खोलता है और आग्रह से मुक्त करता है।

अपरिग्रहवाद :

जैन धर्म में परिग्रह का स्वरूप बताते हुए कहा है– **'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो'** वस्तुओं और विषयों के प्रति जो ममत्व है, आसक्ति है वही परिग्रह है। पदार्थ कोई परिग्रह नही, उसमें जो हमारा मूर्च्छा भाव है, वही परिग्रह वृत्ति है। वस्तुओं के प्रति जब आसक्ति ही नहीं होगी तब उन्हें जुटाने का आकर्षण समाप्त हो जायेगा। फिर उनको संग्रह करने की भावना भी अपने आप समाप्त हो जायेंगी।

जैन दर्शन ने जितनी शक्ति अहिंसा पर लगाई, उतना ही बल अपरिग्रहवाद पर दिया है। अहिंसा की सिद्धि अपरिग्रह से ही हो सकती है। परिग्रह सब हिंसा का जनक है। ज्यों–ज्यों अर्जन, आशाएँ, इच्छाएँ बढ़ती हैं, परिग्रह बढ़ता है और ज्यों–ज्यों परिग्रह बढ़ता है हिंसा बढ़ती है। विलास और वैभव हिंसा के क्रूर पंजों पर ही पनपते हैं। आज दुनियाँ की 95 प्रतिशत सम्पत्ति 5 प्रतिशत लोगों के हाथों में है। शेष 5 प्रतिशत से 95 प्रतिशत जनता अपना काम चलाती है। इसका परिणाम है– तनाव, साम्प्रदायिक विद्वेष, आतंक और युद्ध। हिंसाएँ परिग्रह के कारण ही होती हैं। पदार्थ ससीम है और तृष्णा असीम है, आकाश के समान अनन्त है। सुवर्ण, रजत के असंख्य पर्वत भी लोभी मानव के दिल में परितृप्ति उत्पन्न नहीं कर सकते। विराट् वैभव भी उसके मन को प्रमुदित नहीं कर सकता, वह समझता है– यह बहुत कम है। आग में कितना ही ईंधन डाला जाय वह कभी तुष्ट नहीं होती, सागर में चाहे कितनी ही सरिताएँ गिरें, उसे तृप्ति नहीं होती। यही अवस्था मानवमन की है। एतदर्थ प्रभु महावीर ने इच्छाओं के नियत्रंण पर बल दिया।

भगवान् महावीर ने कहा– धन इस लोक और परलोक में तुम्हारी कहीं भी रक्षा नहीं कर सकता, अतः धन को नहीं, धर्म को महत्त्व दो। धर्म ही सच्चा रक्षक और सही शरण है। भगवान ने संचय का बड़ा विरोध किया 'असंविभागी न हु तस्स मोक्खो' जो संचित करता है, सम विभाग नही करता, बांटता नही, उसको कभी मोक्ष नहीं होता। आत्म बलिदान व त्याग से ही समाज समृद्ध व सुखी बनता है। संग्रह वृत्ति से सामाजिक विषमता बढ़ती है।

कर्मवाद :

जैन दर्शन की कर्मवाद विषयक मान्यता बिल्कुल मौलिक है। बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि कर्मवाद के मर्म को समझे बिना जैन–संस्कृति और जैनधर्म का यथार्थ ज्ञान हो ही नहीं सकता।

इस विराट् विश्व में यत्र–तत्र–सर्वत्र विषमता और विविधता दृष्टिगोचर होती है। सब जीव स्वभावतः समान होने पर भी उनमें मनुष्य, पशु, पक्षी आदि रूप में जो महान् अन्तर दिखाई पड़ता है, इसका क्या कारण है? केवल मानव जगत् को ही लें, तो भी कोई निर्धन है, कोई धनी है। कोई स्वस्थ है, कोई रूग्ण है। कोई निर्बल कोई सबल। कोई सुंदर, कोई कुरूप। कोई अज्ञ, कोई विज्ञ। कोई सुखी, कोई दुःखी। कोई राजा, कोई रंक। कोई रसगुल्ले उड़ा रहा है तो कोई भूख से छटपटा रहा है। कोई महल में, कोई टूटी झोंपड़ी में। इस भेद और विषमता का मूल कारण क्या है? उत्तर में कहना होगा कि विषमता का मूल कर्म ही है। कर्म से ही विविधता और विषमता उत्पन्न होती है।

कर्म के उदय में जीव कषाय और योग के माध्यम से अपने ही प्रदेशों के आस–पास रही हुई कार्मण वर्गणाओं को ग्रहण करता है जो अमुक स्थिति और रस लिये आत्मा के प्रदेशों में पूर्व में बंधे हुए कर्म के साथ सम्बन्धित हो जाते हैं, वे कर्म कहलाते हैं। जैन तत्त्व चिन्तन में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, ये बंधन के पांच कारण बताये गये हैं।

आत्मा में से कर्म–फल दूर हो जाय तो फिर शुद्ध आत्मा ही परमात्मा बन जाता है। अशुद्ध आत्मा संसारी जीव है और शुद्ध आत्मा मुक्त जीव है। निष्कर्ष यही है कि प्रत्येक जीव कर्म करने में जैसे स्वतंत्र है, वैसे ही कर्म–फल भोगने में भी वह स्वतंत्र ही रहता है। कर्म पौद्गलिक होते हुए भी आत्मा के ऊपर अपना प्रभाव डालता है। जैसे पौद्गलिक मदिरा, अमूर्तिक चेतना शक्ति में विकार उत्पन्न कर देती है।

आत्मा स्वभाव से यद्यपि निःसंग, निष्कलंक, निर्मल और नीरज है, तथापि कर्मों के अनादिकालीन संयोग से वह बद्ध, सकलंक, समल और सरज हो रहा है। यह कर्म ज्यों–ज्यों मन्द होते जाते हैं, त्यों–त्यों आत्मा के स्वाभाविक गुणों का विकास होता जाता है।

कर्मवाद का सिद्धान्त जैन दर्शन की विश्व को एक अपूर्व और अलौकिक देन है। इस सिद्धान्त ने मानव के अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति में दीपक को लौ की तरह नहीं, अपितु ध्रुव की तरह अटल रहने की प्रेरणा दी है। कर्मवाद–सिद्धान्त अद्भुत अनन्य और अपराजेय है।

जैन दर्शन में आत्म–मुक्ति के लिए चार साधन बताये– ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति के पांच कारण बताये– काल, स्वभाव, कर्म, पुरुषार्थ व नियति। समय आने पर जीव पुरुषार्थ के द्वारा कर्मो को छिन्न–भिन्न कर सकता है। कर्मवाद की आस्था से ही मनुष्य बुरे कर्म से बचता है और अच्छे कर्म की ओर प्रेरित होता है।

अहिंसा :

अहिंसा सब धर्मों का प्राण है। जैन धर्म का आधार है। अहिंसा आत्मा का आलोक (प्रकाश) है, जीवन की पवित्रता है, मन का माधुर्य है, मैत्री का मूलमंत्र है। स्नेह, सौहार्द्र और सद्भावना का सूत्र है। धर्म, संस्कृति और समाज का प्राण है, साधना का पथ है। अहिंसा का अर्थ है– प्राणातिपात से विरति। स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक किसी भी प्राणी को मन, वचन और काया से कष्ट न पहुँचाना और उनके प्रति मैत्री भाव रखना अहिंसा है– 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' दशवैकालिक एवं आचारांग सूत्र में स्पष्ट है कि समस्त जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नही चाहता, सभी को अपना जीवन प्रिय है, सभी सुख चाहते हैं, दुःख सभी को अप्रिय है, अतः प्राणिवध को घोर पाप समझकर उसका त्याग करें।

ज्ञानी के ज्ञान का सार यही है कि वह किसी भी जीव की हिंसा न करें।

भगवान महावीर ने कहा 'अप्पणा सच्चमेसेज्जा' अपनी आत्मा को तराजू पर तोलकर सत्य का अन्वेषण करें। ऐसा करने पर ही मालूम होगा कि दूसरे प्राणी को मारने, सताने आदि से उतनी ही पीड़ा होती है, जितनी तुम्हें होती है। एक आचार्य ने कहा है कि 'भूसे के ढेर के समान उन करोड़ों पदों को पढ़ने से क्या लाभ? जिनसे इतना भी ज्ञान न हुआ कि दूसरों को पीड़ा नहीं देनी चाहिए।

जिनेन्द्रों द्वारा उपदिष्ट अहिंसा प्रेम, परोपकार, एवं विश्वबंधुत्व की भावना से ओतप्रोत है। जैन–धर्म की अहिंसा का क्षेत्र बहुत ही व्यापक एवं विस्तृत हैं। उसका आदर्श स्वयं आनन्द से 'जीओ और दूसरों को जीने दो' यहीं तक सीमित नहीं है। उसका आदर्श है– 'दूसरों के जीने में सहयोगी बनो', बल्कि अवसर आने पर दूसरों के जीवन की रक्षा के लिए अपने जीवन की आहुति भी दे डालो।' अहिंसा के महान् संदेशवाहक भगवान् महावीर थे।

जैन दर्शन के अनुसार बिना किसी भेदभाव के छोटे–बड़े, त्रस–स्थावर सभी जीवों के प्रति समभाव रखना अहिंसा है।

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र आज अविश्वास, भय और आशंकाओं से घिरे हुए हैं। उनका मन, बुद्धि और जीवन अशान्त और भयाक्रांत सा है। ऐसे समय में शान्ति और विश्वास का वातावरण निर्माण करने वाली कोई शक्ति है तो वह अहिंसा ही है। अहिंसा ही प्राणियों के लिए परम ब्रह्म या परम संजीवनी शक्ति है।

समाधिमरण :

आत्मा की दीर्घकालिक संसार यात्रा के दो पड़ाव हैं– जन्म और मरण। साधक के लिए जैसे जन्म को समझना आवश्यक है, उससे भी बढ़कर मरण को समझना आवश्यक है। किसी भी अन्य दर्शन में समाधिमरण का उल्लेख नहीं है। जैन दर्शन में इच्छा–मरण की सर्वोत्कृष्ट साधना है। इसमें साधक मृत्यु–समय निकट जानकर देह और आत्मा की पृथक्ता का बोध कर पूर्ण जागरूक रहते हुए, समस्त जीवों से क्षमायाचना कर, सभी पापों को वोसिरा कर निडर, निर्द्वन्द्व, निर्लेप और कषाय रहित होकर आत्माभिमुख बन अन्तरलीन हो जाता है। इस अवस्था में किसी के प्रति यहाँ तक कि शरीर के प्रति भी आसक्ति नहीं रहती। मृत्यु के असली स्वरूप को जानने से, स्वसत्ता के बोध से, जड़–चेतन के ज्ञान से, शरीर के प्रति ममत्व त्याग से साधक मृत्यु के समय तनिक भी नहीं डरता। क्योंकि आत्मा का कभी नाश नहीं होता।

संलेखना संथारा सहित मरण व आत्महत्या दोनों ही देह त्याग की अपेक्षा से बाहर में गाय व आक के दूध की तरह यद्यपि समान दिखते हैं, तथापि दोनों में अमृत और हलाहल विष जैसा महान् अन्तर है।

संथारा मरण एवं आत्महत्या में अन्तर

	संथारा मरण	आत्महत्या
1.	समभाव व विवेकपूर्वक ग्रहण किया जाता है, जिससे आत्मबल बढ़ जाता है।	यह अज्ञान व मोह से ग्रसित विषम भावों में की जाती है, जिससे आत्मबल क्षीण हो जाता है।
2.	देह का यथा समय घात होता है, पर आत्मघात नहीं होता।	देहघात के साथ आत्मघात (आत्मा की दुर्गति) भी होती है।

	संथारा मरण	आत्महत्या
3.	यह दण्डनीय कार्य नहीं। इसमें साधक शुद्ध और शुभ भावों में देह छोड़ता है।	यह दण्डनीय अपराध है। इसमें जीव अशुभ भावों में देह छोड़ता है।
4.	यह प्रकट रूप से देवगुरु धर्म की साक्षी से, बड़ों की आज्ञा से, सबके समक्ष विधिपूर्वक ग्रहण किया जाता है।	यह छिपकर विवशता से किसी भी तरह कर ली जाती है।
5.	यह सद्गति का कारण है।	यह दुर्गति का कारण है।
6.	इसमें सबके प्रति क्षमा व मैत्री भाव होता है।	इसमें किसी न किसी के प्रति मरने वाले का आक्रोश होता है।
7.	आयुष्य का अन्त निकट जानकर जीवन की अंतिम घड़ियों में यह निर्मल भावों से ग्रहण किया जाता है।	यह कभी, किसी भी दशा में समस्याओं से घिरा हुआ, कलह में प्रवृत्त, आवेश आने पर कर ली जाती है।

इस प्रकार संथारा आत्महत्या नहीं, वरन् आत्म–उद्धार की, धर्म एवं मनोविज्ञान सम्मत पावन प्रक्रिया है। मृत्यु जीवन का सबसे बड़ा शास्त्र है उसे पढ़े बिना जीवन–मुक्ति संभव नहीं। यह भी जैन दर्शन की मौलिक विशेषता है।

सारांश–

जैन धर्म जीवन के आंतरिक व बाहरी विकारों को दूर करने एवं सुख, शांति, स्वाधीनता, मुक्ति व परमानंद–प्राप्ति का व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक मार्ग है। जैन धर्म आनन्द व सुखपूर्वक जीवन जीने की कला है।

विश्व में जैन धर्म ही ऐसा धर्म है जो 'जन' को 'जिन' बनाकर आत्मा व परमात्मा के भेद को दूर करता है। 'सर्व जीव हिताय, सर्व जीव सुखाय' महासिद्धान्त की प्ररूपणा करके यह धर्म लोक के समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्त्व की रक्षा, पालना व सबके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

पाठ–1

प्राकृत भाषा का इतिहास

जनभाषा : प्राकृत भाषा

प्राकृत भाषा अपने जन्म से ही आम लोगों से जुड़ी हुई है। सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण प्राकृत भाषा लम्बे समय तक जन–सामान्य के बोल–चाल की भाषा रही है। ''महावीर, बुद्ध तथा उनके चारों ओर दूर–दूर तक के विशाल जन–समूह को मातृभाषा के रूप में प्राकृत उपलब्ध हुई। इसीलिए महावीर और बुद्ध ने जनता के उत्थान के लिए प्राकृत भाषा का आश्रय लिया, जिसके परिणाम स्वरूप दार्शनिक, आध्यात्मिक, सामाजिक आदि विविधताओं से परिपूर्ण आगमिक एवं त्रिपिटक साहित्य के निर्माण की प्रेरणा मिली। इन महापुरुषों ने इसी प्राकृत भाषा के माध्यम से तत्कालीन समाज के विभिन्न क्षेत्रों में क्रान्ति की ध्वजा लहरायी थी। इससे ज्ञात होता है कि तब प्राकृत मातृभाषा के रूप में दूर–दूर के विशाल जन समुदाय को आकर्षित करती रही होगी। जिस प्रकार वैदिक भाषा को आर्य संस्कृति की भाषा होने का गौरव प्राप्त है, उसी प्रकार प्राकृत भाषा को आगम–भाषा एवं आर्य–भाषा होने की प्रतिष्ठा प्राप्त है।

प्राकृत जन–भाषा के रूप में इतनी प्रतिष्ठित थी कि उसे सम्राट् अशोक के समय में राज्यभाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ है और उसकी यह प्रतिष्ठा सैंकड़ों वर्षों तक आगे बढ़ी है। अशोक ने भारत के विभिन्न भागों में जो राज्यादेश प्रचारित किये थे उसके लिए उसने दो सशक्त माध्यमों को चुना। एक तो उसने अपने समय की जनभाषा प्राकृत में इन अभिलेखों को तैयार कराया ताकि वे जन–जन तक पहुँच सकें और दूसरे उसने उन्हें पत्थरों पर खुदवाया ताकि वे सदियों तक अहिंसा, सदाचार, समन्वय का संदेश दे सकें। इन दोनों माध्यमों ने अशोक को अमर बना दिया है। देश के अन्य नरेशों ने भी प्राकृत में लेख एवं मुद्राएँ अंकित करवायीं। ई.पू. 300 से लेकर 400 ईस्वी तक इन सात सौ वर्षो में लगभग दो हजार लेख प्राकृत में लिखे गये हैं। यह सामग्री प्राकृत भाषा के विकास–क्रम एवं महत्व के लिए ही उपयोगी नहीं है, अपितु भारतीय संस्कृति के इतिहास के लिए भी महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

अभिव्यक्ति का माध्यम :

प्राकृत भाषा क्रमशः विकास को प्राप्त हुई है। वैदिक युग में वह लोकभाषा थी। उसमें रूपों की बहुलता एवं सरलीकरण की प्रवृत्ति थी। महावीर युग तक आते–आते प्राकृत ने अपने को इतना समृद्ध और सहज किया कि वह अध्यात्म और सदाचार की भाषा बन सकी। इससे प्राकृत के प्रचार–प्रसार में गति आयी। वह लोक के साथ–साथ साहित्य के धरातल को भी स्पर्श करने लगी। इसीलिए उसे राज्याश्रय और स्थायित्व प्राप्त हुआ। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में प्रतीत होता है कि प्राकृत भाषा गाँवों की झोंपड़ियों से राजमहलों की सभाओं तक आदरणीय होने लगी थी, अतः वह अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम चुन ली गयी थी। महाकवि हाल ने इसी समय प्राकृत भाषा के प्रतिनिधि कवियों की गाथाओं का गाथाकोश (गाथासप्तशती) तैयार किया, जो ग्रामीण जीवन और सौन्दर्य–चेतना का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

प्राकृत भाषा के इस जनाकर्षण के कारण कालिदास आदि महाकवियों ने अपने नाटक ग्रन्थों में प्राकृत भाषा बोलने वाले पात्रों को प्रमुख स्थान दिया। नाटक समाज का दर्पण होता है। जो पात्र जैसा जीवन जीता है, वैसा ही मंच पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। समाज में अधिकांश लोग दैनिक जीवन में प्राकृत भाषा का प्रयोग करते थे। अतः उनके प्रतिनिधि पात्रों ने भी नाटकों में प्राकृत के प्रयोग से अपनी पहिचान बनाये रखी। अभिज्ञानशाकुन्तलम् की ऋषिकन्या शकुन्तला, नाटककार भास की राजकुमारी वासवदत्ता, शूद्रक की नगरवधू

वसन्तसेना, तथा प्रायः सभी नाटकों के राजा के मित्र, कर्मचारी आदि पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते देखे जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि प्राकृत जन–समुदाय की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी। वह लोगों के सामान्य जीवन को अभिव्यक्ति करती थी। इस तरह प्राकृत ने अपना नाम सार्थक कर लिया था। प्राकृत स्वाभाविक वचन–व्यापार का पर्यायवाची शब्द बन गया था। समाज के सभी वर्गों द्वारा स्वीकृत भाषा प्राकृत थी। इस कारण प्राकृत की शब्द–सम्पत्ति दिनोदिन बढ़ रही थी। इस शब्द–ग्रहण की प्रक्रिया के कारण एक ओर प्राकृत ने भारत की विभिन्न भाषाओं के साथ अपनी घनिष्ठता बढ़ायी तो दूसरी ओर वह जीवन और साहित्य की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गयी।

वैदिक भाषा और प्राकृत :

प्राकृत भाषा के स्वरूप को प्रमुख रूप से तीन अवस्थाओं में देखा जा सकता है। वैदिक युग से महावीर युग के पूर्व तक के समय में जन–भाषा के रूप में जो प्राकृत प्रचलित थी उसे प्रथम स्तरीय प्राकृत कहा जा सकता है। महावीर युग में ईसा की द्वितीय शताब्दी तक आगम–ग्रंथों, शिलालेखों एवं नाटकों आदि में प्रयुक्त भाषा को द्वितीय स्तरीय प्राकृत नाम दिया जा सकता है और तीसरी शताब्दी के बाद ईसा की छठी–सातवीं शताब्दी तक प्रचलित एवं साहित्य में प्रयुक्त प्राकृत को तृतीय स्तरीय प्राकृत कह सकते हैं। इन तीनों स्तरों की प्राकृत के स्वरूप को संक्षेप में समझने के लिए पहले वैदिक भाषा और प्राकृत के सम्बन्ध को समझना होगा। प्राकृत की मूल भाषा वैदिक युग के समकालीन प्रचलित एक जन–भाषा थी। उसी से वैदिक एवं प्राकृत भाषा का विकास हुआ। अतः उस मूल लोकभाषा में जो विशेषताएँ थीं वे वैदिक भाषा और प्राकृत को समान रूप से मिली है।

साहित्यिक छान्दस् की जन–भाषा में छान्दस् भाषा और प्राकृत के तत्त्व मिले–जुले रूप में उपस्थित थे। यही कारण है कि ऋग्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण आदि छान्दस् साहित्य में प्राकृतीकरण के तत्त्व उपस्थित हैं। छान्दस् साहित्य में शब्दों के प्राकृतीकरण के साथ–साथ प्राकृत के व्याकरणात्मक तत्त्व भी महावीर युगीन प्राकृत के अनुसार प्राप्त होते हैं।

पाठ–2

प्राकृत भाषा के प्रकार

प्राकृत भाषा के प्रकार :–

प्राकृत भाषा को साहित्य में महावीर स्वामी और गौतमबुद्ध के समय में स्थान मिला। इन दोनों का जन्म मगध देश में हुआ था और मातृभाषा मागधी थी परन्तु महावीर स्वामी की उपदेश भाषा अर्धमागधी तथा गौतमबुद्ध की 'पाली' थी। मगध और सूरसेन देश की सीमा पर उस समय जो भाषा बोली जाती थी वह अर्धमागधी थी। मगध देश के अर्धभाग को इस भाषा ने रोका था, इसलिए इसका नाम अर्धमागधी पड़ा होगा, यह भी कहा जा सकता है। कई लोग इसका इस प्रकार भी अर्थ करते है कि इसमें आधे शब्द मगध देश की भाषा के और आधे शब्द अन्य भाषा के मिले हैं। इसीलिए इसका नाम अर्धमागधी पड़ा होगा। परन्तु जैन साहित्य में इस अर्थ की कोई चर्चा नहीं हैं।

पाली भाषा :–

प्राकृत भाषा का दूसरा विभाग पाली नाम से प्रसिद्ध है। पाली शब्द का मूल अर्थ पंक्ति अथवा श्रेणी भी होता है। बौद्ध साहित्य में पाली शब्द का अर्थ सर्वत्र पंक्ति ही मिलता है। उनके मूल ग्रन्थों में भी पाली शब्द का प्रयोग किया गया है। इसलिए बौद्ध धर्म–शास्त्रों की भाषा पाली नाम से प्रसिद्ध हुई जिसका दूसरा नाम मागधी भी है। मागधी भाषा मगध देश के नाम से पड़ी है। यह भाषा उस समय मगध में बोली जाती थी। नाटकों में मागधी भाषा के समान जो प्राकृत भाषा के शब्द आते हैं वे अर्धमागधी या पाली से भिन्न हैं।

महाराष्ट्री :–

मध्ययुग की प्राकृत भाषा में महाराष्ट्री प्राकृत मुख्य है। सौरसेनी आदि दूसरे प्राकृत भाषाओं की अपेक्षा से यह अधिक प्रसिद्ध हुई थीं। महाराष्ट्री प्राकृत का अन्य मतावलम्बियों की अपेक्षा जैन श्वेताम्बरमत ने अधिक सहारा लिया है। महाराष्ट्री प्राकृत में ही सुरसुन्दरी चरित्र, पद्म चरित्र, कुमार पाल चरित्र, कुमार पाल प्रबन्ध, समरादित्य कथा आदि अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं।

सौरसेनी भाषा :–

मध्ययुग की महाराष्ट्री भाषा के समकालीन दूसरी प्राकृत भाषा सौरसेनी नाम से प्रसिद्ध है। यह भाषा मथुरा के आस–पास के प्रदेशों में बोली जाती थी। इस भाषा में बहुत से दिगम्बरों के साहित्य लिखे गये हैं।

मागधी भाषा :–

मगध देश में बोली जाने वाली भाषा को मागधी भाषा कहते हैं। यह पाली भाषा तथा अर्धमागधी भाषा से भिन्न है। र का ल, स का श, और प्रथमा के एकवचन में अकारान्त शब्दों के अन्त में आने वाले एकार, इस भाषा के मुख्य लक्षण हैं। मागधी प्राकृत में एकार बना रहता है और 'ज' के स्थान में 'य' होता है।

पैशाची भाषा :–

मध्ययुग की चौथी भाषा पैशाची है। पाण्ड्य आदि देश पिशाच के नाम से प्रसिद्ध हैं। पाण्ड्य केकय, वाह्लीक, सिंह, नेपाल, कुंतल, सुदेष्ण, चोल, गांधार व कन्नोज ये पिशाच के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन देशों में बोली जाने वाली भाषा पैशाची कही जाती थी।

चूलिका पैशाची :–

मध्ययुग की पाँचवीं भाषा चूलिका पैशाची है। इस भाषा में वर्ग के तीसरे अक्षर के स्थान में पहला अक्षर और चौथे स्थान में दूसरा अक्षर पाया जाता है। बाकी सभी पैशाची भाषा में समान ही हैं। कई लोगों ने चूलिका पैशाची को पैशाची भाषा से भिन्न नहीं माना है।

अपभ्रंश भाषा :–

मध्ययुग की छठी भाषा अपभ्रंश भाषा है। दण्डी ने संस्कृत को छोड़कर सभी भाषाओं को अपभ्रंश ही माना है, परन्तु यह उचित नहीं है, क्योंकि संस्कृत के समान ही अन्य भाषाओं में साहित्यिक रचनाएँ हुई हैं तथा उनके व्याकरण भी हैं।

प्राकृत व्याकरण :–

ऊपर कही हुई मध्ययुगीन भाषाओं के सहित्यों पर व्याकरण भी बने हुए हैं। उनमें सबसे प्राचीन चण्ड का 'प्राकृत लक्षण' नाम का व्याकरण है। प्रधानतः यह प्राचीन युग की सामान्य भाषा का व्याकरण है।

वररूचि का 'प्राकृत प्रकाश' :–

चण्ड के व्याकरण के बाद मध्ययुग की प्राकृत भाषाओं पर वररूचि का 'प्राकृत प्रकाश' सब से पहला व्याकरण है। उसमें वररूचि के द्वारा सूत्र बनाए गए हैं और भामाह ने वृत्ति की है। वररूचि के 'प्राकृत प्रकाश' में चार तरह की भाषाएँ आती हैं। ऊपर कही हुई छः भाषाओं में से चूलिका पैशाची, अपभ्रंश ये दो भाषाएँ उनमें नहीं गिनाई गई हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय पैशाची से चूलिका पैशाची अलग नहीं थी और अपभ्रंश भी स्वतन्त्र भाषा के रूप में गिनने में नहीं आई होगी।

हेमचन्द्राचार्य का सिद्धहेम :–

इसके बाद हेमचन्द्राचार्य का सिद्धहेम व्याकरण उपस्थित होता है। उसके सात अध्यायों में संस्कृत व्याकरण तथा आठवें अध्याय के चार पादों में प्राकृत भाषा का व्याकरण है। हेमचन्द्राचार्य ने ऊपर कही हुई छः भाषाओं का समावेश किया है। हेमचन्द्र का समय बारहवीं शताब्दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनसे पहले छः भाषाएँ प्रकट हो चुकी थीं। हेमचन्द्राचार्य ने सूत्र और वृत्ति स्वयं बनाई है। इनके व्याकरण को जैन तथा जैनेतर दोनों ही मानते हैं। वररूचि के व्याकरण में प्राकृत भाषा शुद्ध महाराष्ट्री प्राकृत है। लेकिन हेमचन्द्राचार्य की प्राकृत भाषा कई जैनागमों की छाया मिश्रित होने से 'जैन महाराष्ट्री प्राकृत' कहीं जा सकती है।

त्रिविक्रम का प्राकृत व्याकरण :–

हेमचन्द्राचार्य के बाद त्रिविक्रम का व्याकरण आता है। त्रिविक्रम दिगम्बर जैन थे। उन्होनें सूत्र और वृत्ति स्वयं बनाई है। षड्भाषा चन्द्रिकाकार लक्ष्मीधर का कहना है कि त्रिविक्रम ने वृत्ति ही बनाई है, सूत्र वाल्मीकि का है।

षड्भाषा चन्द्रिका :–

जिन सूत्रों पर त्रिविक्रम ने वृत्ति बनाई है, उन्हीं सूत्रों की लक्ष्मीधर ने भी वृत्ति की है और उसी का नाम 'षड्भाषा चन्द्रिका' है।

प्राकृत रूपावतार :–

लक्ष्मीधर के समान ही सिंहराज ने भी उक्त सूत्रों पर वृत्ति की है और उसका नाम 'प्राकृत रूपावतार' रखा है। सूत्रों का अनुक्रम षड्भाषा चन्द्रिका के समान ही है।

पाठ–3

प्राकृत वर्णमाला एवं सामान्य ज्ञान

प्राकृत भाषा को सीखने के लिए प्रारम्भिक रूप से निम्नलिखित सामान्य जानकारी आवश्यक है :–

प्राकृत की वर्णमाला

स्वर – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ।

व्यंजन – क, ख, ग, घ, ङ।

च, छ, ज, झ, ञ।

ट, ठ, ड, ढ, ण। त, थ, द, ध, न।

प, फ, ब, भ, म। य, र, ल, व।

स, ह। –ं, ँ ।

नोट :– प्राकृत शब्द के अन्त में स्वर रहित व्यंजन का प्रयोग (जैसे– म्, त् आदि) प्रायः नहीं होता है।

वचन– प्राकृत भाषा में दो ही वचन होते हैं – एकवचन और बहुवचन।

लिंग– प्राकृत भाषा में तीन लिंग होते हैं – पुल्लिंग, नपुंसकलिंग और स्त्रीलिंग।

पुरूष– प्राकृत भाषा में तीन पुरुष होते हैं – उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष।

कारक– प्राकृत भाषा में आठ विभक्ति एवं छः कारक होते है –

विभक्ति	कारक	कारक चिह्न (हिन्दी के आधार से)
1. प्रथमा	कर्त्ता	ने
2. द्वितीया	कर्म	को
3. तृतीया	करण	से, द्वारा
4. चतुर्थी	संप्रदान	के लिए
5. पंचमी	अपादान	से (अलग होने के अर्थ में)
6. षष्ठी	सम्बन्ध	का, के, की
7. सप्तमी	अधिकरण	में, पर
8. सम्बोधन	सम्बोधन	हे, अरे, भो

नोट :– सम्बोधन व सम्बन्ध कारक नहीं होते हैं।

क्रिया– प्राकृत भाषा में दो प्रकार की क्रियाएँ होती हैं – अकर्मक और सकर्मक।

अकर्मक:– जिन क्रियाओं को कर्म की अपेक्षा नहीं होती है, वे क्रियाएँ अकर्मक होती हैं। जैसे – वह रोता है। यहाँ रोना क्रिया अकर्मक है, क्योंकि उसे किसी कर्म की अपेक्षा नहीं है।

सकर्मक:– जिन क्रियाओं को कर्म की अपेक्षा होती है, वे क्रियाएँ सकर्मक होती हैं। जैसे – वह फल को खाता है। यहाँ खाना क्रिया सकर्मक है, क्योंकि उसे कर्म अर्थात् फल की अपेक्षा है।

काल– प्राकृत भाषा में सामान्यत: चार प्रकार के काल हैं –

1. वर्तमानकाल 2. भूतकाल
3. भविष्यत्काल 4. विधि एवं आज्ञा

पाठ–4

संज्ञा व सर्वनाम शब्द

सो	=	वह
सा	=	वह
ते	=	वे सब
ता	=	वे सब
जिण	=	जिनेश्वर
धम्म	=	धर्म
अरिहन्त	=	अरिहन्त
सिद्ध	=	सिद्ध
आयरिय	=	आचार्य
उवज्झाय	=	उपाध्याय
समण	=	साधु
जण	=	मनुष्य
णरअ	=	नरक
लोह	=	लोभ
देव	=	देव
वीर	=	वीर
तित्थअर	=	तीर्थंकर

क्रिया शब्द

पढ	=	पढ़ना
गच्छ	=	जाना
हस	=	हँसना
लिह	=	लिखना
पड	=	गिरना
कुण	=	करना
आव	=	आना
जाण	=	जानना

अव्यय, क्रियाविशेषण आदि शब्द

अत्थ	=	यहाँ
तत्थ	=	वहाँ
सव्वत्थ	=	सब जगह
कत्थ	=	कहाँ
अण्णत्थ	=	अन्य स्थान

जिण शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	जिणो	जिणा
द्वितीया	जिणं	जिणे
तृतीया	जिणेण	जिणेहि, जिणेहिं
चतुर्थी	जिणस्स	जिणाण, जिणाणं
पंचमी	जिणत्तो, जिणाओ	जिणाहिन्तो, जिणेहिन्तो
षष्ठी	जिणस्स	जिणाण, जिणाणं
सप्तमी	जिणे, जिणम्मि	जिणेसु, जिणेसुं
संबोधन	हे जिण, जिणो, जिणा	जिणा

नोट :– यहाँ शब्द रूप संक्षिप्त में दिए गए हैं विस्तृत रूप परिशिष्ट में देखे जा सकते हैं।

धातुरूप

वर्तमान काल - पढ (पढना)

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	पढइ	पढन्ति
मध्यम	पढसि	पढह
उत्तम	पढमि	पढमो

नोट :– यहाँ धातु रूप संक्षिप्त में दिए गए हैं विस्तृत रूप परिशिष्ट में देखे जा सकते हैं।

नियम –

1. कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति तथा कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे – रामो आगमं पढइ। यहाँ रामो कर्त्ता में प्रथमा तथा आगमं कर्म में द्वितीया विभक्ति हुई।
2. कर्त्ता के अनुसार क्रिया का पुरुष व वचन होता है। यथा कर्त्ता प्रथम पुरुष एक वचन होता है, क्रिया भी प्रथम पुरुष एक वचन की होगी।

अभ्यास वाक्य—

प्र.1 निम्न का हिन्दी में अनुवाद कीजिए :–

	एकवचन	बहुवचन
i)	सो पढइ।	ते पढन्ति।
ii)	सा पढइ।	ता पढन्ति।
iii)	जिणो ण हसइ।	जिणा ण हसन्ति।
iv)	उवज्झायो अत्थ लिहइ।	उवज्झाया अत्थ लिहन्ति।

v)	समणो आवइ।	समणा आवन्ति।
vi)	जणो तत्थ हसइ।	जणा तत्थ हसन्ति।
vii)	देवो कत्थ गच्छइ।	देवा कत्थ गच्छन्ति।
viii)	आयरियो ण पडइ।	आयरिया ण पडन्ति।
ix)	वीरो लेहं लिहइ।	वीरा लेहं लिहन्ति।
x)	तित्थयरो सव्वत्थ गच्छइ।	तित्थयरा सव्वत्थ गच्छन्ति।
xi)	तित्थयरो सव्वं जाणइ।	तित्थयरा सव्वं जाणन्ति।

प्र.2 क्रिया के उचित रूप में रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –

(1) समणा ण ....(हस)

(2) जणो णरअं ण ....(गच्छ)

(3) आयरिया......................................(पढ)

(4) उवज्झायो ....(लिह)

(5) समणा..(जाण)

पाठ – 5

सर्वनाम शब्द -

तुमं	=	तुम	तुब्भे	=	तुम सब
अहं	=	मैं	वयं	=	हम सब

संज्ञा शब्द - (अकारान्त नपुंसकलिंग)

फल	=	फल	उज्जाण	=	बगीचा
दुद्ध	=	दूध	पोत्थअ	=	पुस्तक
सत्थ	=	शास्त्र	कव्व	=	काव्य
दव्व	=	द्रव्य	पत्त	=	पत्र
पुप्फ	=	फूल	गिह	=	घर

क्रिया शब्द -

णम	=	नमस्कार करना	पा	=	पीना
इच्छ	=	चाहना	झा	=	ध्यान करना
पास	=	देखना	ण्हा	=	नहाना
लह	=	प्राप्त करना	ठा	=	ठहरना
खिव	=	फेंकना	वय	=	बोलना
रक्ख	=	रक्षा करना	हव, हो	=	होना

फल (नपुंसक लिंग)

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	फलं	फलाणि, फलाइं
द्वितीया	फलं	फलाणि, फलाइं
संबोधन	हे फल	हे फलाणि, फलाइं

पा (पीना)		पुरूष	हो (होना)	
एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
पाइ	पान्ति	प्रथमा	होइ	होन्ति
पासि	पाह	मध्यमा	होसि	होह
पामि	पामो	उत्तम	होमि	होमो

अभ्यास वाक्य—

प्र.1 निम्न का हिन्दी में अनुवाद कीजिए :–

1.	तुमं आयरियं णमसि।	तुब्भे आयरियं णमह।
2.	तुमं गिहं गच्छसि।	तुब्भे गिहं गच्छह।
3.	तुमं सत्थं पढसि।	तुब्भे सत्थाइं पढह।
4.	तुमं कव्वं लिहसि।	तुब्भे कव्वाइं लिहह।
5.	तुमं दव्वं लहसि।	वयं दव्वं इच्छामो।
6.	अहं दुद्धं इच्छमि।	वयं दुद्धं इच्छामो।
7.	अहं पोत्थअं पढामि।	वयं पोत्थआणि पढामो।
8.	अहं पुप्फं पासमि।	वयं पुप्फाणि पासमो।
9.	अहं उज्जाणं गच्छामि।	वयं उज्जाणं गच्छामो।
10.	अहं जिणं णमामि।	वयं जिणं णमामो।

प्र.2 कर्त्ता का उचित क्रिया से संयोजन कीजिए –

अहं	पासमो
वयं	गच्छह
सो	रक्खामि
ते	णमइ
तुमं	लिहसि
तुब्भे	वयन्ति

परिशिष्ट – 1

जिण शब्द के रूप पुल्लिग शब्द

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	जिणो	जिणा
द्वितीया	जिणं	जिणा, जिणे
तृतीया	जिणेण, जिणेणं	जिणेहि, जिणेहिं, जिणेहिँ
चतुर्थी	जिणाय, जिणस्स	जिणाण, जिणाणं
पंचमी	जिणत्तो, जिणाओ, जिणाउ, जिणाहि, जिणाहिन्तो, जिणा,	जिणत्तो, जिणाओ, जिणाउ, जिणाहि, जिणेहि, जिणाहिन्तो, जिणेहिन्तो, जिणासुन्तो, जिणेसुन्तो
षष्ठी	जिणस्स	जिणाण, जिणाणं
सप्तमी	जिणे, जिणेम्मि	जिणेसु, जिणेसुं
सम्बोधन	हे जिण, जिणो, जिणा	हे जिणा

फल शब्द के रूप (नपुंसकलिंग)

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	फलं	फलाणि, फलाइँ, फलाइं
द्वितीया	फलं	फलाणि, फलाइँ, फलाइं
तृतीया	फलेण	फलेहि, फलेहिं, फलेहिँ
चतुर्थी	फलाय, फलस्स,	फलाण, फलाणं
पंचमी	फलत्तो, फलाओ, फलाउ, फलाहि, फलाहिन्तो, फला	फलत्तो, फलाओ, फलाउ, फलाहि, फलेहि, फलाहिन्तो, फलेहिन्तो, फलासुन्तो, फलेसुन्तो
षष्ठी	फलस्स	फलाण, फलाणं
सप्तमी	फले, फलम्मि	फलेसु, फलेसुं
सम्बोधन	हे फल	हे फलाणि, फलाइँ, फलाइं

धातु रूप

वर्तमान काल पढ = पढना

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	पढइ, पढए	पढन्ति, पढन्ते, पढिरे

मध्यम	पढसि, पढसे	पढह, पढित्था
उत्तम	पढमि, पढामि	पढमो, पढामो, पढिमो,पढमु, पढामु, पढिमु, पढम, पढाम, पढिम

वर्तमान काल – पा (पीना)

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	पाइ	पान्ति, पान्ते, पाइरे
मध्यम	पासि	पाह, पाहित्था
उत्तम	पामि	पामो, पामु, पाम

वर्तमानकाल – हा (होना)

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	होइ	होन्ति, होन्ते, होइरे
मध्यम	होसि	होह, होहित्था
उत्तम	होमि	होमो, होमु, होम

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : जैन सिद्धान्त प्रभाकर - उत्तरार्द्ध (24 जुलाई, 2016)

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- **10x1=(10)**

(a) प्राकृत भाषा में वचन होते हैं -
(क) 3 (ख) 2
(ग) 1 (घ) 4 ( )

(b) फल शब्द का सम्बोधन का रूप है-
(क) फल (ख) फलं
(ग) फलस्य (घ) फलत्तो ( )

(c) 'वय' क्रिया का अर्थ है -
(क) खाना (ख) जाना
(ग) बोलना (घ) देखना ( )

(d) नारकी का एक नेरिया दूसरे नैरयिक से स्थिति की अपेक्षा है -
(क) त्रिस्थानपतित (ख) षट्स्थानपतित
(ग) द्विस्थान (घ) चतुस्थानपतित ( )

(e) 'दसद्धवण्णे' का अर्थ होता है-
(क) 10 वर्ण (ख) 5 वर्ण
(ग) 2 वर्ण (घ) 100 वर्ण ( )

(f) दिखाई देने वाले पुद्गल स्कन्ध कितने प्रदेशी होते हैं -
(क) असंख्यात (ख) अनन्त
(ग) अनन्तानन्त (घ) असंख्यात ( )

(g) ग्रहों की उत्कृष्ट स्थिति है-
(क) एक पल्योपम (ख) आधा पल्योपम
(ग) पाव पल्योपम (घ) पल्योपम का आठवां भाग ( )

(h) चौथे देवलोक में लेश्या पाई जाती है -
(क) शुक्ल (ख) पद्म
(ग) तेजो (घ) कृष्ण ( )

(i) पौषधशाला में आकर सुबाहुकुमार ने सर्वप्रथम प्रमार्जन किया -
(क) शय्यासंथारा (ख) हाथ-पैर
(ग) पौषधशाला (घ) उच्चार-पासवण भूमि ( )

(j) अदीनशत्रु राजा किसके समान भगवान के दर्शनार्थ निकला -
(क) जमाली (ख) देवानन्दा
(ग) श्रेणिक (घ) कौणिक ( )

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1=(10)**

(a) उत्तम धर्म श्रवण प्राप्त होने पर भी उसका आचरण दुर्लभ है। ( )

(b) सुबाहुकुमार ने मनुष्यायु का बन्ध किया तब वे मिथ्यादृष्टि थे। ( )

(c) 'कम्मुणा बंभणो होइ' यह गाथा दशवैकालिक सूत्र की है। ( )

(d) 'पुरिसा तुममेव तुमं मित्तं' यह वाक्य उत्तराध्ययन सूत्र का है। ( )

(e) जब दो समान जीवों की आपस में तुलना करें और स्थिति आदि में दुगुने से अधिक अन्तर होता है तो उसे संख्यात गुण-हीन कहते हैं। ( )

(f) जीव-पज्जवा का थोकड़ा भगवती सूत्र से लिया गया है। ( )

(g) जघन्य गुण वाले स्निग्ध और रुक्ष परमाणु में बन्ध नहीं होता। ( )

(h) पाँचों द्रव्य नित्य, अवस्थित व रूपी हैं। ( )

(i) सौधर्म देवलोक की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर है। ( )

(j) मेरु पर्वत के समतल भाग से चन्द्र के विमान 880 योजन ऊपर हैं। ( )

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1=(10)**

(a) मेरी भयंकरता के कारण एक ही अध्ययन में मेरा नाम 36 बार लिया गया है। ....
(b) मैं सुपात्रदान के प्रभाव से सुबाहुकुमार बना। ....
(c) मैं जैन धर्म की आधारशिला हूँ। ....
(d) मेरी स्थिति एक स्थान पतित होती है। ....
(e) मुझमें गुण और पर्याय होते हैं। ....
(f) मेरी तरह जीव के प्रदेशों का संकोच-विस्तार होता है। ....
(g) मेरे प्रदेश नहीं होते हैं। ....
(h) मेरी स्थिति 7 सागरोपम की है। ....
(i) मेरे पहले तक कल्प होते हैं। ....
(j) मेरे मुकुट में सिंह का चिह्न होता है। ....

प्र.4 निम्न प्रश्नों के उत्तर एक-दो पंक्तियों में लिखिए 14x2=(28)

(a) 4 अकर्मक क्रियाएँ लिखिए।
(b) प्राकृत वर्णमाला में कौन-कौनसे स्वर नहीं होते हैं ?
(c) नरक में 3 प्रकार की वेदनाएँ कौनसी हैं ?
(d) हस्तिनापुर नगर कैसा था ?
(e) वरदत्त कुमार ने किसकी देशना सुनकर श्रावक धर्म स्वीकार किया ?
(f) आभियोग्य देव किसे कहते हैं ?
(g) परेऽप्रवीचाराः का अर्थ लिखिए।
(h) बहिरवस्थिताः का अर्थ लिखिए।
(i) किन चार बातों में ऊपर-ऊपर के देव हीन हैं ?
(j) जघन्य अवगाहना वाला नैरयिक जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक से स्थिति की अपेक्षा कितने स्थान पतित होता है ?
(k) केवलानी मनुष्य केवलज्ञानी मनुष्य से स्थिति की अपेक्षा कितने स्थान पतित होता है ?
(l) आत्मा के लक्षण क्या हैं ?
(m) चउरिन्द्रिय जीव की कायस्थिति कितनी है ?
(n) मनुष्य लोक के बाहर काल का व्यवहार क्यों नहीं होता है ?

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए : - 14x3=(42)

(a) परमाणु और प्रदेश में क्या अन्तर है ?
(b) पुद्गल लोक में किस प्रकार स्थित रहते हैं ?
(c) देवों की दस श्रेणियाँ कौनसी हैं ? नामोल्लेख कीजिए।
(d) जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों का विभाजन किस आधार से होता है ?
(e) मध्यम स्थिति वाले पृथ्वीकाय की मध्यम स्थिति वाले पृथ्वीकाय से तुलना कीजिए।
(f) उत्कृष्ट स्थिति वाले बेइन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति वाले बेइन्द्रिय से तुलना कीजिए।
(g) कर्म से दिखने वाली विषमता व विविधता का वर्णन कीजिए।
(h) समाधिमरण का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
(i) प्राकृत भाषा के 6 प्रकार कौनसे हैं ? नाम लिखिए।
(j) कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए।। गाथा का भावार्थ लिखिए।
(k) दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपणिणं।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम ! मा पमायए।। गाथा का भावार्थ लिखिए।
(l) अहीण पंचिंदियत्तं पि से लहे, उत्तम धम्मसुई हु दुल्लहा।
कुतित्थ निसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए।। गाथा का भावार्थ लिखिए।

(m) अकलेवरसेणिमुस्सिया, सिद्धिं गोयम ! लोयं गच्छासि।
खेमं च सिवं अणुत्तरं, समयं गोयम ! मा पमायए।। गाथा का भावार्थ लिखिए।

(n) निम्न वाक्यों के हिन्दी अर्थ लिखिए–

तुमं कव्वं लिहसि– ....

देवो कत्थ गच्छइ– ....

वयं पोत्थआणि पढामो– ....

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : दसवी – जैन सिद्धान्त प्रभाकर उत्तरार्द्ध (परीक्षा 16 जुलाई, 2017)

समय : 3 घण्टे | अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- 10x1 = (10)

(a) देवगति और नरकगति में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक कितने भव तक वहाँ रहता है -

(क) एक-एक (ख) दो-दो

(ग) एक-दो (घ) तीन-तीन ( )

(b) गंडं शब्द का अर्थ होता है -

(क)हैजा (ख) फोड़ा

(ग) कुत्ता (घ) गड़ा हुआ ( )

(c) सुख विपाक के चौथे अध्ययन का नाम है -

(क) धनपति (ख) सुजात

(ग) सुवासव (घ) जिनदास ( )

(d) व्यन्तरों की उत्कृष्ट स्थिति है -

(क) दस हजार वर्ष (ख) एक सागरोपम

(ग) पल्योपम से कुछ अधिक (घ) एक पल्योपम प्रमाण ( )

(e) परमाणु में नहीं होता है -

(क) वर्ण (ख) गंध

(ग) रस (घ) शब्द ( )

(f) मनुष्य जाति के प्रमुख दो भेदों में आर्य के कितने प्रकार हैं -

(क) 4 (ख) 6

(ग) 2 (घ) 5 ( )

(g) तेईस दण्डक के जीव हैं -

(क) संख्यात (ख) असंख्ययात

(ग) अनन्त (घ) उपरोक्त सभी ( )

(h) जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक की स्थिति की अपेक्षा है-

(क)एक स्थान पतित (ख) द्विस्थानपतित

(ग) त्रिस्थानपतित (घ) चतु:स्थानपतित ( )

(i) ईसा पूर्व 300 से लेकर 400 ईस्वी तक इन सात सौ वर्षों में लगभग कितने प्राकृत में लिखे गए-

(क)1000 (ख) 2000

(ग) 3000 (घ) 4000 ( )

(j) थोवं शब्द का अर्थ होता है-

(क) थोपी हुई (ख)टिकी हुई

(ग) थोड़ी देर (घ) स्थापित ( )

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1 = (10)**

(a) चतुरिन्द्रिय काय में उत्पन्न हुआ जीव उत्कृष्टतः असंख्यात काल तक रहता है। ( )

(b) पृथ्वीकाय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य काल तक रहता है। ( )

(c) सुबाहुकुमार का विवाह देवसेना प्रमुख पाँच सौ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में सम्पन्न हुआ। ( )

(d) सात पृथ्वियाँ घनवात, तनुवात और आकाश पर स्थित है। ( )

(e) सातवीं नारकी में जीव की उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागरोपम की है। ( )

(f) जिस जीव में जब ज्ञान होता है तब अज्ञान नहीं होता। ( )

(g) उत्कृष्ट अवगाहना (500 धनुष) वाले नैरायिक सातवीं नारकी में होते हैं। ( )

(h) मनुष्य भव में जो अवधिज्ञान लेकर उत्पन्न होते हैं, वह अवधि ज्ञान जघन्य न होकर मध्यम होता है। ( )

(i) सौरसेनी भाषा में बहुत से दिगम्बरों के साहित्य लिखे गये हैं। ( )

(j) प्राकृत भाषा में संस्कृत की तरह तीन लिंग होते हैं। ( )

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1 = (10)**

(a) मैं स्थानांग व समवायांग का पाठी गिना जाता हूँ। ....

(b) मैं पानी से लिप्त नहीं होता हूँ। ....

(c) मैं वीरकृष्ण राजा की रानी थी। ....

(d) मैं एक ऐसा देव हूँ, जिसके सूर्य, चंद्रमा आदि पाँच भेद होते हैं। ....

(e) मैं एक ऐसा द्रव्य हूँ, जिसे संख्यात, असंख्यात और अनंतप्रदेशी माना गया है। ....

(f) मैं 'प्राकृत प्रकाश' का रचयिता हूँ। ....

(g) मैं ज्ञान-दर्शन-चारित्र, सुख, वीर्य, कर्त्ता-भोक्ता आदि लक्षण वाला हूँ। ....

(h) मैं जैन दर्शन की आधारशिला हूँ। ....

(i) मेरी सिद्धि अपरिग्रह से ही हो सकती है। ....

(j) मैं ऐसा धर्म हूँ जो जैन को जिन बनाकर आत्मा व परमात्मा के

भेद को दूर करता हूँ। ....

प्र.4 निम्न प्रश्नों के उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए। **14x2 = (28)**

(a) आर्यत्व प्राप्त होने पर भी पाँचों इन्द्रियों की परिपूर्णता पाना अति दुर्लभ क्यों है ?

....

....

(b) निम्न गाथांश का अर्थ लिखिए-

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।

....

....

(c) चिच्चाण धणं च भारियं, पव्वइओ हिसि अणगारियं।

....

....

(d) समुख गाथापति के घर में कौनसे पाँच दिव्य प्रकट हुए ?

....

....

(e) से णं तओ अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेह वासे

जाव अड्ढे जहा दढपइन्ने सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ। अर्थ लिखिए।

....

....

(f) कौनसी चार बाते ऊपर के देवों में हीन होती जाती हैं ?

....

....

(g) कल्प किसे कहते हैं ?

....

....

(h) द्विस्थान पतित को समझाइए।

....

....

(I) चतुःस्थान पतित को समझाइए।

....

....

(j) जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय से अवगाहना, स्थिति एवं वर्णादि बीस बोलों की पर्यायों की अपेक्षा तुलना कीजिए।

....

....

(k) गुण किसे कहते हैं ?

....

....

(l) 'जिण' शब्द के प्रथमा, तृतीया, षष्ठी एवं सप्तमी के रूप लिखिए।

....

....

(m) पढ धातु के वर्तमान काल के रूप लिखिए।

....

....

....

....

(n) निम्न प्राकृत वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद कीजिए-

देवो कत्थ गच्छइ ....

अहं पोत्थअं पढामि ....

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए : - **14x3 = (42)**

(a) इइ इत्तरियंमि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।

विहुणाहि रयं पुरे कडं, समयं गोयम! मा पमायए। गाथा का भावार्थ लिखिए।

....

....

....

....

(b) एव भवसंसारे संसरइ, सुहासुहेहिं कम्मेहिं।

जीवो पमायबहुलो, समयं गोयम। मा पमायए। गाथा का भावार्थ लिखिए।

....

....

....

....

(c) अवउज्झिय, मित्तबंधवं, विउलं चेव धणोहसंचयं

मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम! मा पमायए। गाथा का भावार्थ लिखिए।

....

....

....

....

(d) अबले जहा भारवाहए, मा मग्गे विसमेऽवगाहिया।

पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम! मा पमायए।

....

....

....

....

(e) सुख विपाक सूत्र का अध्ययन करने से हमें क्या जानकारी प्राप्त होती है ?

....

....

....

निम्नांकित सूत्रों के अर्थ लिखिए-

(f) नित्याशुभतरलेश्या-परिणाम-देह-वेदना-विक्रियाः।

....

....

....

....

(g) नृस्थिति परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते।

....

....

....

....

(h) काय प्रवीचारा आ ऐशानात्।

....

....

....

....

(i) आ आकाशादेक द्रव्याणि।

....

....

....

....

(j) जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकाय के जीव की जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकाय से द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना एवं स्थिति की अपेक्षा से तुलना कीजिए।

....

....

....

....

(k) जघन्य अवगाहना वाले मनुष्य की जघन्य अवगाहना वाले मनुष्य से द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना एवं स्थिति की अपेक्षा से तुलना कीजिए।

....

....

....

....

(l) जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय की जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना एवं स्थिति की अपेक्षा से तुलना कीजिए।

....

....

....

....

(m) जैन दर्शन की मौलिक विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

(n) समाधिमरण से सम्बंधित चार बिन्दू लिखिए।

....

....

....

....